भूमिका

यह बात बिल्कुल निर्विवाद है कि प्राणी मात्र को अविनाशी सुख की अत्यंत तीव्र इच्छा है और उस तीव्र इच्छा के पूर्ण करने में हर एक प्राणी प्रयत्न भी करता नज़र आता है परन्तु पूर्णानन्द की—तृप्ति की उद्गार निकालता हुआ कोई कोई दीखता है, इसका क्या कारण है? पूर्ण सुख के तीव्र इच्छावान प्रयत्न करके भी कामयाब नहीं होते दीखते यह क्यों? क्या पूर्ण सुख की प्राप्ति असंभव है?-यदि असंभव हो तो ऐसी इच्छा ही उत्पन्न न होनी चाहिये क्योंकि यदि थोड़ा भी विचार करके देखा जावे तो ज़रूर मालूम हुए बिना न रहेगा कि संभवकी ही, प्राप्त होने योग्य वस्तुकी ही इच्छा हुआ करती है, जिस पदार्थ का प्राप्त करना असम्भव है उस की इच्छा स्वप्न में भी किसी को नहीं होती, बहुत ही स्थूल दृष्टि से देखो तो मालूम होगा कि शरदी से व्याकुल प्राणी को अग्नि की और गर्मी से तपते हुए प्राणी को ठंडे जल और ठंडे पवन की ही इच्छा होगी, सूर्य के मंडल में बैठकर शरदी दूर करना वा चन्द्र मन्डल में बैठकर तपिश दूर करना कोई नहीं चाहता है संभव, प्राप्त होने योग्य वस्तु की ही इच्छा हुआ करती है, जब यह स्पष्ट है तो यह कैसे कहा जासक्ता है कि हर एक प्राणी पूर्ण आनन्द, जिस में दुःख की गन्ध भी न हो, नहीं प्राप्त कर सक्ता, पूर्ण सुख अवश्य....

अवश्यमेव प्राप्त करसक्ता है परन्तु प्रयत्न ठीक २ होना चाहिये, मनुष्य प्रयत्न करते हैं लेकिन बिल्कुल उल्टा, और नतीजा यह होता है कि बजाय शांति के अधिक अशांति को प्राप्त हो जाते हैं–प्रयत्न में जो ग़लती करते हैं वे क्या ग़लती करते है ? जैसे कोई पुरुप उमदा-मसालेदार पेड़े की इच्छा करे और उसके प्राप्त करने को किसी भुर्जी–चने भूनने वाले की दूकान पर ज़ा खड़ा हो और उसके मना करने पर भी–उसके कहने पर भी कि 'यहां पेड़े नहीं हैं' उसी दूकान से पेड़े ख़रीदने का प्रयत्न करे, तो क्या उसका प्रयत्न सफल होगा ? कदापि नहीं, अगर कोई पुरुप–शरदी में जकड़ा हुआ अग्नि की इच्छा करता हुआ अग्नि के शोलों के अक्स को ठन्डे जल में देखकर उसीको (अग्नि के अक्स को) सच्ची अग्नि निश्चय करके ठंडे जल में कूद पड़े, तो क्या उसकी शरदी दूर हो जायगी ? हर्गिज़ नहीं, तैसे ही नादान–सुख की इच्छा करने वाला–अविनाशी आनन्द का उम्मेदवार इस दुनिया में सुख की आशा करता है–इस भुर्जी की दूकान–नाम रूपात्मक संसार में पूरे आनन्द की आशा करता है–विपयों में सुख टटोलता है-सच्चे सुखकी ओर न देखता हुआ प्रतिबिंबित सुख के प्राप्त करने में प्रयत्न वान है और बारहा नाकामयाबी अनुभव (महसूस) करके भी इस मुर्दार–नाम रूपात्मक-नमूदी दुनिया से मुँह नहीं मोड़ता है–इस दुनिया में आज तक किसी को भी अविनाशी सुख नहीं मिला है इसमें वृद्ध पुरुपों की गवाही बस है–इतना ही नहीं, बल्कि तीन लोक चतुर्दशभुवन में भी अविनाशी सुख-सच्चा आनन्द उनका

है-कृष्ण परमात्माकी मुनादी है कि ब्रह्मलोकका सुखभी नाशवान ही है–देखो देवताओं में सत्वगुण प्रधान होता है तो भी, और देवराज इन्द्र तीनों लोकों का राजा कहलाताहै तोभी पूर्ण आनंदी नहीं है-उसको भी भय रहता है-यदि कोई मनुष्य तप करने लग जाय तो इन्द्र अपनी इन्द्र–पदवी के छिन जाने के भय से उस के तप में विघ्न डालने की कोशिश करता है (विश्वामित्र तथा मेनका की कहानी पाठक जानते ही हैं)

पेट भरा हुवा किस का समझना चाहिये ? उसका, जिस को भोजन की इच्छा बिल्कुल न रहै, पूरा सुखी, अविनाशी सुख वाला कौन ? वही, जिस को सुख की इच्छा नहीं रही अगर अच्छी तरह पेट भरा हो तो स्वादिष्ट और क़ीमती भोजन भी वृत्ति को अपनी तर्फ़ नहीं खींच सक्ता है, यदि सच्चा, अविनाशी आनन्द प्राप्तहो जायतो स्वर्ग वैकुंठ, गोलोक और इंद्रासन व ब्रह्म लोक का सुख भी निवृत्त होजाने वाला होने के कारण पाजी है, अब ज़रा ध्यान दीजिये और गिनते जाइये कि भुजी की दूकान पर, इस नाम रूपात्मक संसार में कितने भूखे हैं, दस रूपिये की हैसियत वाला पचास रूपे चाहता है और पचास रूपे की हैसियत वाला सौ रुपे, हज़ार पति लक्ष और लक्ष पति करोड़ और करोड़ पति राज्य चाहता है और राजा चक्रवर्त्त की वसुधा और चक्रवर्ती, इंद्रासन की इच्छा करता है तात्पर्य यह है कि जितना जितना मिलता जाता है उतनी उतनी इच्छा भी चढ़ती जाती है, जिस की जितनी बड़ी इच्छा है गोया वही बढ़िया भिखारी है रोटी मांगना 'मैं भूखा हूं' यह कहना है, चींटी से ब्रह्मा तक बस

अवश्यमेव प्राप्त करसक्ता है परन्तु प्रयत्न ठीक २ होना चाहिये, मनुष्य प्रयत्न करते हैं लेकिन बिल्कुल उल्टा, और नतीजा यह होता है कि बजाय शांति के अधिक अशांति को प्राप्त हो जाते हैं—प्रयत्न में जो गलती करते हैं वे क्या गलती करते है ? जैसे कोई पुरुष उमदा-मसालेदार पेड़े की इच्छा करे और उसके प्राप्त करने को किसी भुर्जी—चने भूनने वाले की दूकान पर ज़ा खड़ा हो और उसके मना करने पर भी—उसके कहने पर भी कि 'यहां पेड़े नहीं हैं' उसी दूकान से पेड़े खरीदने का प्रयत्न करे, तो क्या उसका प्रयत्न सफल होगा ? कदापि नहीं, अगर कोई पुरुष—शरदीमें जकड़ा हुआ अग्नि की इच्छा करता हुआ अग्नि के शोलों के अक्स को ठन्डे जल में देखकर उसीको (अग्नि के अक्स को) सची अग्नि निश्चय करके ठंडे जल में कूद पड़े, तो क्या उसकी शरदी दूर हो जायगी ? हर्गिज़ नहीं, तैसे ही नादान—सुख की इच्छा करने वाला—अविनाशी आनन्द का उम्मेदवार इस दुनिया में सुख की आशा करता है—इस भुर्जी की दूकान—नाम रूपात्मक संसार में पूरे आनन्द की आशा करता है—विषयों में सुख टटोलता है-सच्चे सुखकी ओर न देखता हुआ प्रतिबिंबित सुख के प्राप्त करने में प्रयत्न वान है और [illegible] नाकामयाबी अनुभव (महसूस) करके भी इस [illegible] नाम रूपात्मक नमूदी दुनिया से मुँह नहीं [illegible] में [illegible]
तक किसी को भी [illegible]
पुरुषों की गवाही बस [illegible]
चतुर्दशभुवन में भी [illegible]

जुरूर मालूम होगा कि आनंद का समुद्र जिस को अनुकूल विषय रूपी पत्थर कभी कभी छलका देते हैं आप के ही अंदर है, ऐसा जानने पर और विषय जन्य सुखों को अपना ही अक्स, झलक, छलक मानने पर आप को मालूम होगा कि वह सुख सागर आप के अंदर नहीं है वह मुजस्सिम आनंद [Toy personified] तुम आप ही हो—खुद

वास्तव में तमाम दुनिया. तीन लोक चतुर्दश भुवन के मालिक आपही हो, इस में ज़रा भी संदेह नहीं है और जब तक आप अपने को जों का त्यों न अनुभव कर लोगे तब तक हज़ार तदबीरें करलो, लाख उपाय करो सुख व संतोष न होगा लेक्चर सुनते २, पुस्तकों में तृष्णा को त्यागने के उपदेश सुनते २ उमरें गुज़र गईं और गुज़र रही हैं, दस आदमियों में बैठ कर तृष्णा की बुराई खुद भी करने में ज़रा कमी नहीं रखते, तिस पर भी तृष्णा घटती नहीं है, इसकी वजः ? यही, कि तुम ब्रह्म हो, परमात्मा हो, सिवाय तुम्हारे इस विश्व की मिल्कियत का दूसरा मालिक नहीं है अपना वास्तविक हक़, तमाम विश्व की मालिकी का ज्ञान जब तक न प्राप्त कर लोगे, आप को पर ब्रह्म, परमात्मा अनुभव द्वारा न जान लोगे तब तक शांति असंभव है—स्वर्ग, वैकुंठ इत्यादि लोकों में क्षणिक आनंद, दुःखो से लिपटे हुवे आनंद को भोग भोग कर फिर लौट कर उनहीं लोकों के वास्ते कर्मों को करते रहो, इसी चक्र में घूमते रहो, शांति न होगी।

प्यारे पाठक ! सच्चिदानन्द का तो निश्चय यह है कि सिवाय परमात्मा के दूसरी वस्तु है ही नहीं सच्चिदानन्द

रूपी सुख सागर में दृश्या दृश्य प्रपंच तरंगों की तरह मिथ्या, अनहुआ—सच्चिदानन्द से अभिन्न है ऐसा निश्चय होने के बग़ैर पूरी शांति हरगिज़ नहीं हो सक्ती है, वेदों से पूछलो, शास्त्रों की राय ले देखो, चाहे सबको छोड़कर अपने अनुभव की कसोटी पर परखलो—इस पुस्तकमें जो लेखहैं वे सच्चिदानंद रूपी महासागर की तरंगे हैं या यों समझिये कि सच्चिदानंदरूपी सुखसागरकी एक तरंग- स्वामी सच्चिदानंद का उद्गारें हैं।

इस पुस्तक के छपजाने के वास्ते रा० रा० ठकर श्री श्रेष्ठ चन्नाभाई पैराज की अधिक इच्छा थी-इस वास्ते उन्हों ने अपने व्यय से इस को छपाया है ॥

पाठक गण! यदि इस पुस्तक को कहानी की तरह न पढ़ोगेअच्छी तरह ध्यान देकरअपने अनुभव से मिलान करतेहुए पढ़ोगेतो अवश्य आपको अपना आत्मा,अपनाआप जिस्की तर्फ़ आपकी 'मैं' का इशारा है, आपको आनन्दरूप (आनन्दीनहीं)भासेगा और तमाम विश्वको अपनीही विभूति दमक,चमत्कार,अदा समझकर मनुष्य शरीरको सफल करोगे

प्यारे पाठक! ध्यान देकर—एकान्त में बैठकर पढ़ोगे तो तुमारे मुख से 'चिदानन्द रूपः शिवोहं शिवहम्' बेतहाशा न निकलने लगे तो कहना—

इस पुस्तक की क़ीमत थोड़ी रक्खी गई है कि जिससे सर्व साधारण भी देख सकें—यदि उर्दू जानने वाले भी अपनी ख़्वाहिश ज़ाहिर करेंगे तो उर्दूमें भी छापनेकी चेष्टा की जावेगी

सर्व का आत्मा

सच्चिदानन्द
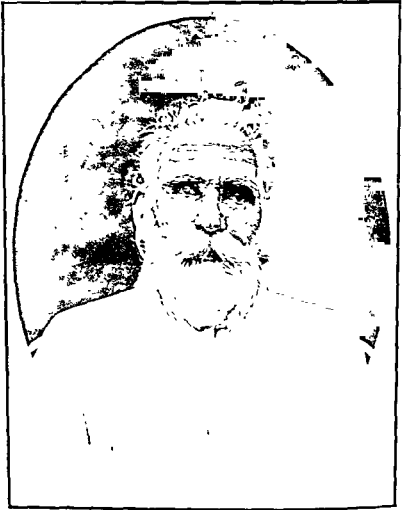
श्री १०८

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्यवर्य्य श्री स्वामी निर्भयानंदजी महाराज.

श्री १०८.

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्यवर्य्य श्री स्वामी सच्चिदानंदजी महाराज.

विषय	पृष्ठ

अहा हा हा क्या तमाशा है कैसा इन्द्र जाल का खेल है जैसे समुद्र में तरंग बुद बुदे पैदा हो कर नाश हो जाते हैं और सिर्फ़ जल ही रह जाता है जैसा कि तरंग पैदा होने से पेश्तर था तैसे ही मुझ में—नहीं नहीं उस में जिस का नाम कोई नहीं वह ऐसा है या तैसा है यहभी जिस में कहना नहीं बनता और जिस में रंग रूप वगै़रः भी नहीं हैं और है व नहीं भी जिस के दर बार में जगह नहीं पाते उस अशब्द रूप में कुल संसार— जीव, जगत्, ईश्वर, ब्रह्म, विद्या, अविद्या, मैं, तू, यह, वह, बन्धनं व मोक्ष तरंग की तरह पैदा हो कर नाश हो जाते हैं और वही अनाम पद जो पहिले था रह जाता है—अहा हा हा उसी ने मैं, तू, यह, वह, वगै़रः के परदे में अपने को इस तरह छुपाया है जैसे जल अपने चहरे को तरंगों से छुपाले वही बात है— कैसा परदा है कि चिलमन से लगे बैठे हैं। साफ़ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं ॥ जैसे स्वाब में अन हुई तमाम दुनियां द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी रूप होभासती है तैसे ही इस वक्त अन हुआ ठाठ है अगर गौ़र किया जावे तो साफ़ मालूम होता है कि ववक्त स्वाब

इति समाप्तम्

अहा हा हा क्या तमाशा है कैसा इन्द्र जाल का खेल है जैसे समुद्र में तरंग बुद बुदे पैदा हो कर नाश हो जाते हैं और सिर्फ़ जल ही रह जाता है जैसा कि तरंग पैदा होने से पेश्तर था तैसे ही मुझ में—नहीं नहीं उस में जिस का नाम कोई नहीं वह ऐसा है या तैसा है यहभी जिस में कहना नहीं बनता और जिस में रंग रूप वग़ैरः भी नहीं हैं और है व नहीं भी जिस के दर बार में जगह नहीं पाते उस अशब्द रूप में कुल संसार— जीव, जगत, ईश्वर, ब्रह्म, विद्या, अविद्या, मैं, तू, यह, वह, बन्धनं व मोक्ष तरंग की तरह पैदा हो कर नाश हो जाते हैं और वही अनाम पद जो पाहिले था रह जाता है—अहा हा हा उसी ने मैं, तू, यह, वह, वग़ैरः के परदे में अपने को इस तरह छुपाया है जैसे जल अपने चहरे को तरंगों से छुपाले वही बात है— कैसा परदा है कि चिलमन से लगे बैठे हैं। साफ़ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं ॥ जैसे ख़्वाब में अन हुई तमाम दुनियां द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी रूप होभासती है तैसे ही इस वक्त अन हुआ ठाठ है अगर ग़ौर किया जावे तो साफ़ मालूम होता है कि बवक्त ख़्वाब

दर अस्ल वही मौजूद है जिस का नाम ख़्वाब के लिहाज़ से द्रष्टा फ़र्ज़ कर लिया गया है और उस के सिवाय कुछ भी नहीं है तैसे ही–इस वक्त भी वही आत्म सत्ता ज्यों की त्यों मौजूद है, विला किसी क़िस्म की तब्दीली के। सच्चिदानन्द यह कभी नहीं कहेगा कि दुनियां अज्ञान से भासती है और ज्ञान से लय हो जाती है क्योंकि ज्ञान व अज्ञान के सहित जब जगत् है ही नहीं तो क्या कहा जावे–जैसे सितारे में झिलमिलाना स्वाभाविक ही उस के स्वयंप्रकाश होने के सबब से मालूम होता है (नमूद मात्र) जैसे माणि में जगमगाना होता है तैसे ही मुझ [मैं का आधिष्ठान या मफ़हूम] में जो झिलमिलाना है गोया वही दुनिया का पैदा होना और नाश होना है–झिलमिलाने की हालत में दो क़िस्म की हरकत मालूम हुवा करती हैं तैसे ही मुझ में फ़ुरना और अफ़ुरना दो क़िस्म की हरकत नज़र आती हैं लेकिन दर अस्ल दोनों हरकतों से बरी हूं क़िस्सा कोताः जगत् की उत्पत्ति और लय मालूम होता है लेकिन दर वाक़ै है नहीं जैसे सूर्य्य में क्रिया नमूदी है वजूदी नहीं तैसे आत्मा में जगत् है जैसे वाज़ वाज़ स्वयंप्रकाश सितारे में एक क़िस्म की हरकत सी [लुप २] मालूम होती है और दर अस्ल उस में है नहीं तैसे मुझ स्वयं प्रकाश आत्म देव में जगत् की पैदायश और लय रूप क्रिया अनहुई मालूम होती हैं दर अस्ल हैं नहीं क्या तमाशा है॥

आनन्द आनन्द, आनन्द,
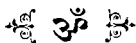
ग्रहण के समय शास्त्र की आज्ञा है कि सब व्यावहारिक कामों को बंद करके भजन (परमात्मा की याद) करो, और दान करो- मोक्ष (सूर्य या चन्द्रमा के निर्मल हो जाने पर) होजाने पर व्यावहारिक प्रवृत्ति में हानि नहीं है, ग्रहण के समय संसारी कार्य, खान पान का व्यवहार, दान लेना आदि शूद्रों का काम है, त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य) का नहीं है ॥

हे संसारी जीवो ! तुम क्या गज़ब कर रहे हो ? शूद्राचारी क्यों बन गये हो ? क्या तुम जानते हो कि चन्द्र ग्रहण की अपेक्षा सूर्य ग्रहण के समय शास्त्र की उपरोक्त मर्यादा अधिक सावधानता से पालना चाहिये और दोनों ग्रहणों के समय जितनी सावधानता चाहिये वह लेखनी में नहीं आसक्ती है-सूर्य स्वयं प्रकाश है और चन्द्रमा पर-

प्रकाश है—सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है—तुम्हारा आत्मा-परमात्मा, सूर्यों का सूर्य, क्या तुमको स्पष्ट भासता है ? यदि नहीं, तो यह सूर्य ग्रहण का अवसर नहीं तो क्या है ? और तुम्हारा मन रूपी चंद्रमा (मन का देवता चंद्रमा, शास्त्रों में प्रसिद्ध है) क्या निर्मल है ? अगर सूर्यों का सूर्य तुम्हारा आत्मा स्पष्ट नहीं भासता और मन रूपी चंद्रमा सांसारिक वासना रूपी राहुने आच्छाद (ढक) रक्खा है तो ऐसे अवसर पर खान पान, [शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंधादिक में राग] बंद करो, परमात्मा का भजन—आत्म चिन्तन करो और दान करो—अपनी ममत्व की चीज़ों से—देह इन्द्रियादि से ममत्व हटालो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो आपकी गणना अवश्यमेव शूद्रों में होगी दान करो दान करो दान करो—भगवान् शंकराचार्य कहते हैं:—

अहं ममेति यो भावो देहाक्ष्यादावनात्मनि ।
अध्यासोयं निरस्तव्यो विदुषास्वात्मनिष्ठया ॥

अर्थः— देह, इन्द्रिय आदि अनात्म (जो आत्मा अर्थात् आपे से पृथक्) पदार्थों में जो 'अहं और मम' (मैं और मेरा) भान है-यह अध्यास-भ्रम है-इस भ्रम को विद्वान् आत्म निष्ठा—स्वरूप स्थिति द्वारा दूर करे.

सूर्य ग्रहण का कारण मन (चन्द्रमा) या अहंकार है-उसी की परछांई आत्म रूपी सूर्य पर पड़ती है और मन रूपी चन्द्रमा के ग्रहण का कारण शब्दादिक पंच विषयों का वंडिल

(पृथ्वी का गोला) है आत्म रूपी सूर्य को स्पष्ट देखे बिना और मन रूपी चन्द्रमा को निर्मल (सात्विक) देखे बिना स्नान पानादि व्यावहारिक कार्यों में प्रवृत्त होने वालो! क्या तुम को त्रिवर्ण में दावा करने का अधिकार है? हरे हरे हरे! तुम कैसे हिन्दू हो? कैसे धर्मात्मा? क्या लड़कियों की भांति गुड्डे गुड़ियों से खेलने वाले नहीं हो? क्या इन्हीं सूर्य चन्द्र के ग्रहण की चिंता है असली सूर्य चन्द्रमा का विचार नहीं है? तुम से भी अधिक मूर्ख वे हैं जो कहते हैं कि 'ईश्वर भजन ग्रहण के समय ही मुख्यता से क्यों करें–ईश्वर भजन तो सदैव ही चाहिये' प्यारे ईश्वर भजन तो सदैव ही चाहिये परंतु ग्रहण के समय सब कामों को छोड़ कर मुख्यता से करना चाहिये–कारण कि ग्रहण के समय सूर्य, चंद्र, पृथ्वी ये तीनों एक सीध में होजाते हैं और यह बात मानी हुई है कि सरल रेखा (Straight line) हमेशः टेढ़ी रेखा (Curved line) से छोटी होती है–इस से स्पष्ट है कि सूर्य चंद्र पृथ्वी ग्रहण के समय अधिक निकटवर्ती होते हैं और तीनों में आकर्षण शक्ति है–ऐसे अवसर पर प्रलय का संभव है इस लिये सब कार्य छोड़ कर ग्रहण के समय ईश्वर भजन मुख्यता से अवश्य करना चाहिये–देखना कहीं प्रलय न हो जावे—अनात्म पदार्थों में आत्मा का हवन न होजावे–खबरदार–भजन करो–ईश्वर का स्मरण करो जो जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का स्थान है उसकी याद (मालूम) करो–सब कार्य्यों में निरहंकृत रूपी दूर्वा डाल दो–फिर दोष नहीं है

ॐ ॐ ॐ

ॐ

यशोदा कृष्ण संवाद

य शोदा ए प्यारे कृष्ण! तू मरघट (स्मशान) में जाकर क्यों खेलता है? देख वहां कैसी कैसी खराब दुर्गंधि वाली चीजें हैं:—कहीं हाड़ पड़े हैं कहीं मांस और रुधिर पड़े मूत्र विष्ठा आदि भी वहां पड़े हैं—और हे बाले कृष्ण! इतना ही नहीं वहां एक पिशाच रहता है वह तुझे बहुत सतावेगा वहां भूतनी रहती हैं वह तुझे कष्ट देंगी [कृष्ण] हे माता। मैं अकेला तो वहां कभी नहीं जाता हूं बलदाऊ भाई के साथ जाता हूं या नन्द बाबा के साथ जाता हूं, इस तरह जाने में तो डर नहीं ? (य०) हे कृष्ण वहां तो तू कभी जाहीमत बलदाऊ और बाबा नन्दजी तो तुझे परसों वहां जाने को रोकते थे तू कैसे कहता है कि मैं उन के संग जाता हूं— झूठे! (कृष्ण) मा वहां बड़े २ तमाशे दीखते हैं इस लियेजाता हूं परन्तु देख मेरे पास यह बाबा का बनाया हुआ (दिया हुआ) तावीज़ है, क्या फिर भी पिशाच मुझे दुख देगा! [य०]अरे हटीले तू क्या मानैगा, पर देख इस तावीज़ को गमाना नहीं. वह पिशाच तेरा तावीज़ धोका देकर छीन लेगा . (कृष्ण) मा मेरे पास तावीज़ होगा तो मेरे पास वह पिशाच आवेहीगा क्यों ? मा, अब ले तुझ से सच्ची कहता हूं, मैं वहां जाता तो रोज़ हूं परंतु पिशाच दूर खड़ा रहता है और कभी कभी तो इस तावीज़ के देखते ही जानै किधर भाग जाता है और हे माता ! भूतनियां मुझ को सताती

स्मशान–शरीर. पिशाच–अहंकार, भूतनी– इन्द्रियां, बलदाऊ– विवेक, नन्द– गुरुदेव, तावीज– अहंब्रह्मास्मि, स्मशान भासना ही नहीं–शरीर भासताही नहीं–कमली–निर्गुण स्वरूप,

नहीं हैं मेरे सामने नृत्य करती रहती हैं और मुझे खूब हँसाया करती हैं और हे यशोदा मैं स्मशान ही में थोड़े ही बैठा रहता हूं मैं तो सब स्थानों में खेला करता हूं – नंद बाबा ने ऐसा तावीज़ दिया है कि माता मुझ को कहीं भी कुछ कष्ट नहीं भासता है, स्मशान से माता मुझे तू डराती है परंतु मैं सत्य कहता हूं कि इस तावीज़ के प्रताप से मुझ को स्मशान भासता ही नहीं है और यह मालूम होता है जानों घर में ही हूं और नन्द बाबा और मैया तू जानों मेरे पास बैठे हैं (य०) फिर तू वहां जाताही क्यों है ? (कृष्ण) मा मैं वहां रास लीला रचता हूं (य०/स्मशान में ? (कृष्ण) हां मैया— देख जिस को तू पिशाच कह कर मुझे डराती है वह तो मेरा साज़िंदा बनता है और जिन को तू भूतनी कहती है वह नाना प्रकार के नाच करतीं हैं और मैं अपनी काली कम्बली पर मौज से बैठा देखता रहता हूं ऐसे तो कुछ हानी नहीं है ? काली चीज़ पर तो आसेब का असर नहीं होता? (य०) देख तुझे वे भुतनी कुछ देने लगें तो बेटा खा मत लीजो (कृष्ण) सो तू चिन्ता मत करे मैया, स्मशान रूपी मंडप में बैठ कर अपनी कमली पर दूर से देखता रहता हूं और इस तावीज़ के सबब से वह मेरे पास तक तो आतीं नहीं, वे आपस में ही खाती पीती रहती हैं और कभी खाता भी हूं तो हे माता बाबा का बताया मन्त्र निरहंकारता रूपी पढ़ लेताहूं 'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यक्त्वाकरोतियः, लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र मिवांभसा' । ॐ ॐ ॐ

ॐ
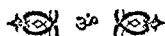
त्याग से ही अमृत की प्राप्ति

न धन से, न विद्या से, न प्रजा से, न तप से अमृत (मोक्ष) प्राप्त होता है—केवल त्याग से ही मुक्ति मिलती है—श्रुति

सुवर्ण के साथ किसी अन्य घटिया धातु का मेल हो जाता है तो सुवर्ण भी घटिया दीखता है दूध के साथ पानी का मेल हो जाय तो दूध की क़ीमत उतनी नहीं रहनी गेहूं के साथ जौ या चना मिला होताहै तो गेहूं सस्ते भाव में जाता है ऊनी वस्त्र में सूत का मेल होजाताहै तो उस का दाम घट जाजा है इत्यादि तात्पर्य यहहै कि वस्तु की असली क़ीमत और गुण अन्य वस्तु के मेल होने से छुप जाते हैं एक औषधि में ही देखो कि अनूपान से और प्रकार के गुण भासने लगते हैं, सुवर्ण आदि धातु तप कर (तपस्या द्वारा) शुद्ध निर्मल हो जाता है और फिर वास्तव गुण स्वभाव प्रघट हो आते हैं, थोड़ा कष्ट सहन करने के पश्चात्—प्यारे आत्मन्! धन का कोष भरने से, बहुत से ग्रंथों को मग़ज़ में भरने से, तरह तरह की क्रिया कर ने से और बहुत सी औलाद होने से नित्य सुख नहीं मिल सक्ता इतना ही नहीं बल्कि मिलना असंभव है, और यह भी साहस पूर्वक कहा जासक्ता है कि उलटा सुख घटता है, दुख बढ़ता है जैसे सुवर्ण में अन्य धातु जितना अधिक समावेश

होता जायगा उतनी उसकी क़दर घटती ही जायगी, वेद कहता है त्याग से नित्य सुख-मोक्ष प्राप्त होता है, क्या प्यारे सुखाभिलाषियो वेद बचन पर विश्वास करोगे? नियम है कि वस्तु से उसका स्वरूप प्रथक् नहीं होसक्ता है बाहर की मिलीहुई चीज़ें दूर होसकती हैं. जैसे अग्नि से उष्णता दूर नहीं हो सकती, गर्मजल में से होसकती है, वेद न त्यागने योग्य वस्तु के त्यागने का उपदेश हरगिज़ नहीं करता है। कोई भी यह नहीं कहेगा कि जल में से शीत या अग्नि में से ऊष्णता या मिश्री में से मिष्टता दूर करो त्यागने योग्य वस्तु ही त्यागी जाती है और उसी के त्याग का उपदेश भी होता है अब सुनो कि तुमारे आपे (Self) में कौनसी चीज़ मिली हुई है? शरीर भी तुमारा आपा नहीं है मन बुद्धि अहंकार भी तुमारा आपा नहीं है और वहुत कहने से क्या? जितनी चीज़ें तुम इन्द्रियों और मन द्वारा जानते हो वह एक भी तुम खुद नहीं हो और तुम कहते और मानते भी हो कि मेरा मन, मेरा शरीर; मेरी बुद्धि, मेरा मकान मेरी छड़ी इत्यादि, मन बुद्धि इन्द्रिय शरीर रूपी खोट (घटिया धातु का मेल) तुम त्यागदो और नक़द मोक्ष फिर तुमारा ही है क्या तुम इन को त्याग नहीं सकते? ज़ुरूर त्याग सकते हो प्रथम इस बात को विचारो कि यह त्यागे जासकते हैं या नहीं– तुमको मालूम होगा कि ज़ुरूर त्यागे जासकते हैं, तुमने इनके त्याग का अनुभव ज़ुरुर किया है सुषुप्ति में। लेकिन वह त्याग नहीं कहा जाता

वह तो ज़बरदस्ती का छीन लेना है तो भी तुम को जो
वक्त आनन्द का भान होना है उस आनन्द के सामने स
प्रकार के तुमारे अनुभव किये हुये सुख पार्जा हो जाते है
अब तुम को मालूम हुआ कि मन बुद्धि आदिक जो तुम
में खोट है–तुमारे गले पड़े है–वह दूर होसकते हैं और यह
भी जान गये होगे कि वे तुमारा स्वरूप नहीं हैं आ
तुमारा स्वरूप होते तो अलग नहीं हो सक्ते थे–अब क्य
है ? त्यागदो, त्यागदो, मारो गोली । यदि मुश्किल मालूम
होती है तो सच्चिदानन्द तुम को युक्ति बताता है-इस
शरीर मन बुद्धि अहंकार इन्द्रियों की माला जो तुमने पहनी
है और तुम को क्लेश का हेतु हो रहा है, तुम इसका सु
(अहंकार) तोड़ दो–माला आप तित्तर वित्तर हो जायगी
तुम को इस में कुछ भी परिश्रम नहीं होगा– सुवर्ण की
तरह अग्नि का ताप नहीं सहन करना होगा–कारण कि
यह मिथ्या हैं - मिथ्या न होते तो सुषुप्ति में अलग (नाश)
न हो जाते तुम इन से संबंध तोड़ दो यह दूसरा बहुत सर
उपाय है संबंध से ही तुमारी आबरू घटी है और उसी
दुख को प्राप्त हुए हो यह फिर चाहे जो करें तुमको क्लेश न
होगा–तुम इनमें अहं और मम रूपी रिश्ता बना रहे हो इसी
से दुख होता है–संबंध टूटने पर तुम बरी हो–एक आद
एक कुत्ते पर ममत्व रखता हो और वह कुत्ता किसी क
काटले तो ज़रूर उस आदमी को दंड मिलेगा और कुत्ते को
गोली से मार दिया जावे तो भी अवश्य उस आदमी को

कष्ट होगा—पति और पत्नी का संबन्ध जब तक क़ाइम है तब तक पत्नी के दुराचरण से पति की आबरू जाती है, और क्लेश होता है यदि संबंध टूट जाय (पति तलाक़ देदे) तो पत्नी एक दिन में दस पति करे और छोड़े, चाहे वेश्या बन बैठे पति का क्या? तैसे ही जब तक तुमारा संबंध इस अहंकार से है—जब तक इस के साथ एक हो रहे हो (दूध और जल की तरह) जब तक इसके कर्मों का अपने में आरोपण करते हो तब तक लाख उपाय भी करो छुटकारा न होगा—मुक्ति की बात भूल जाओ—अहंकार तुम नहीं हो हरगिज़ तुम नहीं हो—सुषुप्ति और क्लोराफ़ार्म तुमको इसका अनुभव कराते हैं फिर तुम इसको अपना नहीं२ आपा, मान कर क्यों दुख भोगते हो—यह अहंकार तुम ही खुद होते तो भला शास्त्र निरहंकार बनने का उपदेश ही क्यों करते ? कुत्ता आदमी को काटे और मज़ा उसके मालिक को? अन्धेर है या नहीं ? इसका कारण है कि वह कुत्ते के साथ मिल रहा है ममत्व रूपी रस्से से बन्धा हुआ है " मैं करता हूं " इस मिथ्या अभिमान को ज्ञान के तोप के गोले से (मैं अहंकार नहीं हूं इस ज्ञान से) उड़ादो; इस रमज़ को जानने वाला नहीं बांधा जाता है चाहे उसके शरीर से अन्य की दृष्टि में अशुभ कर्म भी हो जाय— एक आदमी शेर के मारने की इच्छा से गोली छोड़े और आदमी के जा लगे तो दंड का भागी नहीं होगा और दूसरा आदमी किसी आदमीको मारने के इरादे से गोली छोड़े और गोली उसके न लगे तो भी

दंड का भागी होगा— क्यों ? अभिमान से। आदमी उसकी गोली से मारा गया और घातक को दंड नहीं ? कारण कि 'मैं घातक हूं मैं आदमी पर गोली चला रहा हूं' यह अभिमान उस में नहीं था और दूसरे की गोली अपना काम न करे तो भी दंड पावेगा कारण 'कि मैं इस को मारने वाला हूं' यह अभिमान उस में है—वास्तव में कर्म में (बज़ात खुद) फल नहीं है अभिमान मे फल होता है एक बच्चे ने एक तृण फेंका और वह तृण गौ की आंख में पड़गया और गौ की आंख फूट गई तो बच्चे को उस का फल न भोगना होगा कारण कि तृण फेंकते समय उस को अभिमान नहीं था 'कि मैं तृण फेंक रहा हूं और गौ को दुख देकर पापी बन रहा हूं' दूसरा आदमी एक चींटी को जान कर मारे तो ज़रूर पाप का भागी होगा और उसका फल भी भोगेगा—प्यारे अपने ही हाथ से आंख में नमक लगाकर दुखी मतहो—जितने दुख और सुख तुम भोगते हो वह उन्हीं कर्मों का तो फल है जो तुमने अहंकार दुष्ट के साथ मिलकर न करते हुये भी किये थे यानी आप को कर्त्ता मान बैठे थे वेद गर्जकर कहता है कि 'मैं कर्त्ता नहीं हूं और अहंकार से मेरा संबंध नहीं है', इस असली बात का जानने वाला (पाप पुण्य उस के शरीर से होते हुए भी) शुभ अशुभ के फल को नहीं भोगता—'हयमेध सहस्राण्यथ कुरुते, ब्रह्मघात लक्षाणि, परमार्थ विन्नपुण्यैःनच पापै स्पृशते विमलः

कृष्ण भी यही उपदेश करते हैं ' यस्यनाहं कृतो भावो बुद्धि र्यस्यन लिप्यते–हत्वापि स इमां लोकान्नहन्ति न निबध्यते, क्यों प्यारो वेद का प्रमाण मिलगया, स्मृति का प्रमाण मौजूद दृष्टांत द्वारा समझ में आया अनुभव से भी सिद्ध कर लिया कि हम अहंकार नहीं हैं फिर भी क्या आप को इसके त्याग में कुछ दिकत है? त्याग दो, ' मैं करता हूं ' इस अभिमान को त्याग दो और फिर तुम अमूल्य हो, दुनिया ब्रह्मलोक और स्वर्ग से आदि लेकर तुमारे मुकाबले में तो क्या तुमारे पासंग के भी काबिल नहीं हैं—इस अहंकार रूपी खोट को निकालो अपने को कर्त्ता मत मानो- तुम कुछ करते भी तो नहीं हो फिर अन करे का फल मुफ्त में क्यों भोगते हो ॥

अहंकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ,
आत्मान मकर्त्तारं यः पश्यति सपश्यति ,

नान्यः गुणेभ्य कर्त्तारम् (गीता)

अहंकार का त्यागही त्यागहै बाहरके त्यागमात्र से सुख नहीं, शाख कटने से वृक्ष का नाश नहीं होता बीज जलने से अत्यंत नाश होता है संसार (भव दुख) रूपी घट माला का अहंकार सुमेरु है ॥

ॐ ॐ ॐ

दंड का भागी होगा– क्यों ? अभिमान से। आदमी उसकी गोली से मारा गया और घातक को दंड नहीं ? कारण कि 'मैं घातक हूं मैं आदमी पर गोली चला रहा हूं' यह अभिमान उस में नहीं था और दूसरे की गोली अपना काम न करे तो भी दंड पावेगा कारण 'कि मैं इस का मारने वाला हूं' यह अभिमान उस में है–वास्तव में कर्म में (बज़ात खुद) फल नहीं है अभिमान मे फल होता है एक बच्चे ने एक तृण फेंका और वह तृण गौ की आंख में पड़गया और गौ की आंख फूट गई तो बच्चे को उस का फल न भोगना होगा कारण कि तृण फेंकते समय उस को अभिमान नहीं था 'कि मैं तृण फेंक रहा हूं और गौ को दुख देकर पापी बन रहा हूं' दूसरा आदमी एक चींटी को जान कर मारे तो ज़रूर पाप का भागी होगा और उसका फल भी भोगेगा–प्यारे अपने ही हाथ से आंख में नमक लगाकर दुखी मतहो–जितने दुख और सुख तुम भोगते हो वह उन्ही कर्मों का तो फल है जो तुमने अहंकार दुष्ट के साथ मिलकर न करते हुये भी किये थे यानी आप को कर्त्ता मान बैठे थे वेद गर्जकर कहता है कि 'मैं कर्त्ता नहीं हूं और अहंकार से मेरा संबंध नहीं है', इस असली बात का जानने वाला (पाप पुण्य उस के शरीर से होते हुए भी) शुभ अशुभ के फल को नहीं भोगता–'हयमेध सहस्राण्यथ कुरुते, ब्रह्मघात लक्षाणि, परमार्थ विन्नपुण्यैःनच पापै स्पृशते विमलः

कृष्ण भी यही उपदेश करते हैं ' यस्यनाहं कृतो भावो बुद्धि र्यस्यन लिप्यते–हत्वापि स इमां लोकान्नहन्ति न निबध्यते, क्यों प्यारो वेद का प्रमाण मिलगया, स्मृति का प्रमाण मौजूद दृष्टांत द्वारा समझ में आया अनुभव से भी सिद्ध कर लिया कि हम अहंकार नहीं हैं फिर भी क्या आप को इसके त्याग में कुछ दिक्कत है? त्याग दो, ' मैं करता हूं ' इस अभिमान को त्याग दो और फिर तुम अमूल्य हो, दुनिया ब्रह्मलोक और स्वर्ग से आदि लेकर तुमारे मुकाबले में तो क्या तुमारे पासंग के भी काबिल नहीं है—इस अहंकार रूपी खोट को निकालो अपने को कर्त्ता मत मानो- तुम कुछ करते भी तो नहीं हो फिर अन करे का फल मुफ्त में क्यों भोगते हो ॥

अहंकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ,
आत्मान मकर्त्तारं यः पश्यति सपश्यति ,

नान्यः गुणेभ्य कर्त्तारम् (गीता)

अहंकार का त्यागही त्यागहै बाहरके त्यागमात्र से सुख नहीं, शांख कटने से वृक्ष का नाश नहीं होता बीज जलने से अत्यंत नाश होना है संसार (भव दुख) रूपी घट माला का अहंकार सुमेरु है ॥

ॐ ॐ ॐ

ॐ

ब्रह्म आत्मा की एकता से ही मुक्ति

न योगेन, न सांख्येन, कर्मणानो, न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्व बोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा ॥

हे सुखाभिलाषी ! जिन जिन पदार्थों को तू जानता है (इन्द्रिय और अंतः करण की सहायता से) उन का तिरिस्कार कर दे कारण कि नाम और रूप मिथ्या हैं — प्यारे आत्मन् इन के धोखे में रह कर वक्त न गँवा , और इन का इतना तिरिस्कार कर कि इन का ख्याल भी न रहै और इन के ख्याल के अभाव का भी ख्याल गुम कर दे, बिना परमात्मा के ज्ञान के सुख नहीं है, तू जानता है और तू ने सुना है। प्यारे ! जिस को तू नहीं जानता है वही परमात्मा है . वह कब ज़ाहिर होगा ? जानी हुई चीज़ें गुम हो जावेंगी तब-यह जानी हुई चीज़ें [नाम रूप] ही तो परदा कर रही हैं, नाम रूप को उड़ादे , इस नाम रूप के ही घूँघट में उस का चहरा छुपा.हुआ है, विद्या पढ़ कर सुख न मिलेगा, न कर्म या और किसी साधन से मिलेगा, जब तक नाम रूप की मुहब्बत रहेगी वह दर्शन न देगा, मन और बुद्धि की ऐनक तोड़ देगा तब उस के दर्शन होंगे, इन्द्रिय , मन , बुद्धि को जब हटा देगा तब परमात्मा ही बाकी रह जायगा निर्विशेष, जैसे घट की कैद में आकर आकाश का नाम घटाकाश

होता है और व्यापक आकाश का नाम भी महाकाश हो जाता है वास्तव में दोनों आकाश मात्र ही हैं घट टूटने पर या उस की दृष्टि त्यागने पर महाकाश और घटाकाश दोनों नहीं रहते आकाश मात्र ही रह जाता है तैसे अंतः-करण रूपी घट में हे निर्विकार व्यापक, निर्विकल्प, ब्रह्मनाम वाले चिन्मात्र! तेरा नाम 'मैं' या आत्मा होगयाहै औरअंतः करणसे बाहर वाला ब्रह्म कहलानें लगा है—अंतःकरणकी दृष्टि त्यागने पर आत्मा और ब्रह्म एक हो जाते हैं और यह दो नामभी नहीं रहतेहैं—घटने आकाशके दो नाम करदिये 'घटा-काश और महाकाश तैसे' एक ही सत्ता मात्र के दो नाम 'जीव और ब्रह्म' अंतः करण ने कर दिये हैं, जैसे तरंग जल ही में उठती है मिथ्या, परंतु जल के दो नाम कर देती है सतरंग और निस्तरंग तैसे आत्मा रूपी जल में अंतःकरण ने दो नाम कर दिये हैं 'जीवात्मा और परमात्मा, अंतः करण के एक छोटे से घोंसले में से 'मैं २' न बोल, भीतर वाला और बाहर वाला दोनों तू ही है, इस तरह जब तक जीवात्मा और परमात्मा को एक ही न जाना जायगा तब तक दुखों का अंत असंभव है ॥ ॐ ॐ ॐ

जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं

जैसे जल में तरंग पैदा हो जाती है और आपको जल से पृथक मान लेती है कि मैं तरंग हूं इतनी बड़ी हूं—अमुक तरंग से छोटी हूं अमुक से बड़ी हूं

मैं उधर को जाती हूं इधर को आती हूं मैं पैदा और नष्ट होती
हूं तैसे हे आत्मा रूपी समुद्र की तरंग (जीवात्मा) तू आपको
परिच्छिन्न भाव में मत देख तू 'मैं' नहीं है और तेरी 'मैं' और
सब की 'मैं' भी एक ही आत्मा की 'मैं' है-तूने 'मैं' [तरंग]
में आसन लगा रक्खा है इसी लिये तुझको परिच्छिन्नता
का बड़े छोटे पन का, पैदा और नष्ट होजाने का भय
प्राप्त हुआ है और औरों की 'मैं' (जो असल में तेरी ही हैं)
औं से राग द्वेष करके वृथा जलता है, तू 'मैं' भाव
को त्याग, तू 'मैं' नहीं है तू तो 'परमात्मा' है यदि तू आप
को 'मैं' ही मानता है तो सच्ची 'मैं' ओं को अपनी ही जान
प्यारे! जब तू सुषुप्ती में होता है तो प्रत्यक्ष देखता है कि मैं
तू-वह-जगत्-जीव ईश्वर-ब्रह्म-प्रकृति का पता भी नहीं
मिलता और इनके पते लगाने की ज़ुरुरत भी नहीं रहती
वह अवस्था हे आत्म रूपी समुद्र ! तेरे निस्तरंगपन की है
फिर जब तुझ आत्म रूपी समुद्र में तरंग हो जाती है
अर्थात् सृष्टि हो जाती है तब तरंगों की भांति जीव, ईश्व
जगत्, ब्रह्म, प्रकृति आदि भासते हैं, जैसे तरंग भी जल है,
फेन भी जल है, बुल बुला भी जल है तैसे जीव ईश्वर जगत
प्रकृति आदि सब आत्म सत्ता ही है, हे तरंग [जीवात्मा]
तू समुद्र (परमात्मा) ही है तू क्यों अपने समुद्र भाव (आत्म
भाव) को भूल गई यह तरंग पन (जीवत्व) तेरे में कल्पना
मात्र है, अहा कैसा आश्चर्य है तरंग को जल के पाने की इच्छा
हो रही है जीवात्मा को परमात्मा के मिलने की इच्छा है, इस

ालीखोलिये का इलाज ? इस वहम की दारु ? मछली की पास के बुझाने का उपाय ? वहम की दवा क्या हो ? इस का इलाज वेद बताता है— इस भूत को वेद भगवान् 'तत्व-ासि' के डंडे से उतारता है, हे तरंग ! तूही है वह (जल-जिस की तुझे इच्छा हैं) हे जीवात्मा ! तूही है वह (परमात्मा जिस की तुझे इच्छा है) अगर हे तरंग (जीवात्मा) ! तू सोचैगी तो निस्तरंगपने की अवस्था में (सुषुप्ति में) सच्चिदानन्द का कहा तुझे मानना ही पड़ैगा— गौर से देखो तो नानात्व भास का नाम तरंग है—नहीं तो समुद्र क्या है ? एक बड़ा जल का तरंग ही तो है—तैसे नानात्व भास का नाम ही जीवात्मा आदि हैं नहीं तो परमात्मा क्या है ? वह भी समुद्रवत् महान् जीवात्मा ही तो है—जैसे समुद्र नानात्व के भास विना तरंग नहीं कहा जाता और उस में तरंगवत् आना जाना नहीं होता—तैसे ही परमात्मा नानात्व (सृष्टि) विना जीव नहीं कहा जाता और जीवात्मा के धर्म नहीं होते, परन्तु समुद्र और तरंग में भेद नहीं तैसे परमात्मा और जीवात्मा में भेद नहीं है, समुद्र में स्थित तरंग पर हाथ रखकर कह सकते हैं कि यह समुद्र है तैसे जीवात्मा भी परमात्मा ही है ॥ ॐ ॐ ॐ

अलाहाबाद में हुजूम त्रिवेणी तटपर

मेला—त्रिगुणात्मिका माया का तमाशा

हे राजा महाराजो! तुम ने बड़े बड़े जप तप यज्ञदान के फल में यह राज्य (नरतनु) प्राप्त किया है आओ

त्रिवेणी तट पर अद्भुत प्रदर्शिनी देखो, देखने योग्य है-
गरीबों [पशु पक्षियों] को देखना नहीं मिलता है, केवल राजा
महाराजा [मनुष] ही देख सक्ते हैं कारण कि बादशाही
प्रदार्शिनी है, वहां बड़े बड़े विचित्र दृश्य दीखते हैं आओ
आओ चले आओ .... हैं .... हें .... क्या करते हो!
ऊपर को चढ़े चले आओ नीचे खड़े होनेवाले पकड़े जाते
हैं और उन से मज़दूरों की तरह काम भी लिया जाता है
यहां आओ धुर ऊपर. सातवें माल (मंज़िल) पर, यह प्रद
र्शिनी गरीबों और कंगाल मज़दूरों की प्रदर्शिनी वत् चन्द
रोज़ा (२, ३ मासकी) नहीं है, यह बारहों मासीहै और इस
प्रदर्शिनी में रोज़ रोज़, नहींनहीं, क्षण क्षण नये नये, तमाशे
होते रहतेहैं-हां अब देखो! ओहो हो हो यहांतो बड़ेअश्चर्यमय
तमाशे दीख रहे हैं, हवाई जहाज़ ही नहीं यहां तो मकान
और शहर भी उड़ते हैं, वह देखो हिमालय उड़रहा है और
आकाशमें गंगा बहरही है, अहाहा क्याही अचंभा है, देखो
बिना एंजिनके आकाशमेंगाड़ी दौड़रहीहै और यह देखो इधर
बिना स्त्री पुरुष के संयोग के बच्चा पैदा होगया, यह दूसरा
बच्चा एक ही दिन गर्भ में रहकर पैदा हुआ है और पूरे नौ
मास का सा है, अहा! बिना बादल के पानी की वर्षा हो
रही है देखो! बिना सर का आदमी लेक्चर डिलीवर कर
ता है, यह देखो चार पैर किस जानवर के हैं बाकी का
शरीर नहीं है इस में से कुत्ते कीसी आवाज़ निकल रही है
देखो यह हवा में मनुष्यों के सिर हंसतेहुवे उड़ते जा रहे हैं

हा हा हा हा ज़रा इधर तो देखो, यह बालक अभी पैदा हुवा है और इस के चहरे पर डेढ़ बालिश्त की सफेद डाढ़ी है और गोदी में (खोले) पुत्र साथ लिये पैदा हुआ है- यह लो, विना वृक्ष के यह आम्रफल पैदा हुवे हैं देखो इस दीवार में हाथी घुस गया, पर्वत गायब हो गया, और देखो तृण में से नदी का प्रवाह चल रहा है. यह देखो हाल का बच्चा कोर्ट में खड़ा बैरिस्टरीका काम कररहा है, वह देखो कपड़ेमें से विना आदमी के गायनकी ध्वनि कैसी मीठी निकल रही है, देखो विना तेल बत्तीके दीपक जलता है, कहो कैसा मज़ेदार तमाशा है (तमाशे में के आदमी) हमको तो आपत्ति मालूम होती है फिरते२ मरेजाते हैं (दूसरे आदमी तमाश में के) अरे भाई मज़ावज़ा यहां कुछ नहीं है वे ऊपरवाले तो वैसेही डींग मार रहे हैं भला होता कुछ———मज़ा होता तो हमें न दीखता ? हम भी तो तमाशे में हैं कि नहीं ? (ऊपर वाले) तुम ज़रूर तमाशे में हो और तुम्हारे दुख का कारण भी यही है, ज़रा आओ यहां सातवें मंज़िल पर तब मालूम होगा, अहा हा हा ॥ ॐ ॐ ॐ

अल्लाहाबाद=परमात्मा का बसाया हुआ, परमात्मा जिसको सत्ता स्फूर्ति दे रहाहै ॥ त्रिवेणी=सतोगुण,रजोगुण,तमोगुण ॥ राजामहाराजा मनुष्य ॥ गरीब=पशुपक्षी आदि योनि । बादशाही प्रदर्शनी=दैवी माया का तमाशा यानी ठाठ ॥ सातवांमंज़िल-श्रोत्र, त्वक् ,चक्षु, रसना,घ्राण मन, बुद्धि के ऊपर आत्म रूपी आरामकुर्सी

तमाशे में के आदमी=नीचे के सात मंज़िल के रहने वाले

फिरते२=आवागवन के धक्के खाते २ ॥ ॐ

ॐ

वेदान्त सुनेने पर भी आनन्द का भान क्यों नहीं होता?

वे दान्त को बहुधा क़िस्से कहानी की तरह सुनने वालों को लाभ नहीं होता – प्यारे यदि परमानन्द की उत्कट इच्छा है तो इस को कहानी मत समझो, है तो यह भी कहानी ही, परंतु किसी दूसरे की नहीं है और गढ़ंत करी हुई (फ़र्ज़ी) नहीं है यह बिल्कुल सची है और तुम्हारी ही है जिस को सुख की तलाश है उसी को वेदान्त रसमय भासता है और सुख का सचा मुतलाशी वही हो सक्ता है कि जिस ने अच्छी तरह निश्चय कर लिया है कि इन्द्रियों के सुख सचे सुख नहीं हैं ऐन्द्रजालिक, धोखा ही धोखा हैं, जैसे कोई महा रोगी पुरुष वैद्य की वार्त्ता को पूर्ण ध्यान से सुनता हुआ अपने शरीरस्थ रोग से मिलाता जाता है तैसे जिस को जन्म मरण रोग की भ्रांति यानी मालीख़ोलिया हो गया है उसे चहिये कि ब्रह्मनिष्ठ महात्मा की शरण में जाकर पूरे ध्यान से आत्म भगवान् की कथा सुने और जितना जितना सुने उस को अपने अनुभव में ज़रूर लावे यदि अनुभव में लाने की आदत न डालेगा तो वेदान्त सुन–

ने में आलस्य और निद्रा घेरेंगे और अनुभव में लाने की आदत हो तो रोज़२ आनन्द बढ़ता जायगा- यदि आलसी या बहुत सोने वाला भी होगा तो उस का आलस्य और निद्रा घटते जायंगे, अनुभव में लानेसे ही इस कल्याण कारिणी विद्या से परमानन्द की प्राप्ति होती है और किसी प्रकार संभव नहीं है अनुभवका नाम ही इस जगह अभ्यास है, बिना वैराग्य और अभ्यास के वेदान्त से मुक्ति नहीं होती, फोनोग्राफ़िक वेदान्ती बेशक बनजायगा सो भी पूरा नहीं कह सकैगा कहने में किसी न किसी मौके पर ग़लती अवश्य करैगा और ऐसी ग़लती कि जिस से कुल विषय दूषित हो जायगा [दृष्टान्तः—नई रेलका] परन्तु प्यारेपाठक गण सच्चिदानन्द तो यही मानरहा है कि यदि औरोंको वेदान्त श्रवण कराके वाह२ कराभी ली और अंतरसे 'मैं परमानंद हूं' ऐसा अनुभव नहीं किया तो वह वाहवाह जूतों से बढ़ कर ही है; कुछ परवाः नहीं अगर हम दूसरे को अपने ख्यालात सुन्दर शब्दों में नहीं कहसकते, कुछ परवाह नहीं अगर हम को दूसरे की शंका निवृत्त करना नहीं आता कुछ परवाः नहीं अगर हम को कोई ज्ञानी नहीं कहता— इन बातों की कमी भी हो तो जिसने आप को परमानन्द स्वरूप मान लिया है (अनुभव से) वह महात्मा है ज्ञानी है—कर्त्तव्य यही है बस परन्तु अनुभव ऐसा हो कि यदि व्यास भगवान् की मूर्त्ति और चतुर्भुज रूप से कृष्ण भी आकर कहें कि तू जन्म मरण वाला है और यह संसार सत्य

है तो भी न माने–यदि हमारे मुंह में मिश्री की डली है और मिठास का अनुभव हो रहा है तो हमारे सामने आकर तीन लोक और १४ भुवन की भी सामर्थ्य नहीं कि हमारी निश्चय फेर सकें–निश्चय फिरा नहीं करता है, जो फिरे नहीं वही है निश्चय (ध्रुव) प्यारे मैथमैटिक्स, यूक्लिड, मेन्सूरेशन जागरफ़ी, हिस्टरी की तरह इसको मग़ज़ में मत भरो दिल में भरो, जैसे पानी हवा को हटा कर आप स्थित होता है तैसे यह वेदान्त का अभ्यास तुमारे दिल में से 'मैं' को निकाल कर परमानन्द की स्थिति करेगा–नहीं २ यह वेदान्त श्रवण, और मनन इस तरह हैं जैसे जगाने वाला होता है सो यह परमानन्द को वहां (तुमारे दिल में) कहीं बाहर से लाकर नहीं स्थित करेंगे बल्कि वहां का वहीं उस को जागृत करदेंगे उस के जागते ही मैं २ के सिर की ख़ैर नहीं (जैसे केसरी के सामने बकरे की ख़ैर नहीं होती) प्यारे वेदान्त ही कल्याण कारक है, जल्दी मत करो– धैर्य से श्रवण करो, अच्छी तरह ध्यान पूर्वक जो श्रवण होता है और मनन होता है वह निदिध्यासन में बड़ा भारी सहायक होता है।

वेदान्त का आनन्द इस तरह प्राप्त होता है, आत्म भगवान् इस तरह प्रत्यक्ष होते हैं- निर्वाणता की इस तरह प्राप्ति होती है जैसे कूए में से जल–सुनो ! पहिले मनुष्य ।दना शुरु करता है खुश्क मिट्टी मिलती है फिर कुछ असें बाद ऐसी मिट्टी निकलने लगती है कि जिस में कुछ

जल का मिलाप मालूम होता है,खोदते २ मिट्टी में जल का भाग वढ़ता ही जाता है यहां तक कि हाथ में मिट्टी पकड़ो तो उस में से जल टपकता है और खूब टपकता है—प्यारे खोदने वाले (जिज्ञासू) खोदना (विचार- धारना) वन्द न करना, इस जल के ऊपर (आनन्द पर) लट्टू होकर खोदना मत वन्द करना, जल तो है, परन्तु मिट्टी से मिला हुआ है पीने के काबिल नहीं है (यह सुख संसारिक मिट्टी वाला है) खादेजा—ज़रा भी मत बैठ, नहीं तो चारों तर्फ़ से मिट्टी थोड़े निकले हुए जल को भी दबादेगा—खोद खोद खोदेजा............ब........स बस अब फेंकदे फावड़ा........ दूर ॥ अब सोता खुलगया- अब देख कैसी धार नीचे से छूटती है फव्वारे की तरह कि उसके ज़ोर से मिट्टी विट्टी (संसारिक वासना) आप ही हटी जा रही हैं उसके ऊपर मिट्टी ठहर ही नहीं सकती है- अब बजा आनन्द के तार विचर जीवन्मुक्त हुवा तात्पर्य सर्व लेख का यही है कि वेदान्त ध्यान से सुनो और एकांत में ज़रूर उस को अनुभव द्वारा सिद्ध करदेखो- मालूमात को वारदात के रूप में लाओ मालूमात का नतीजा यही है कि याद करके कहदोगे कि हां भाई फ़लां २ युक्ति से आत्मा ब्रह्म रूप ही है बस ख़तम——और वारदात में लेआओगे तो आनन्द वारिद होजायगा—तुमारी रोम २ रंग जावैगी - हिजड़ा भी रस के राग सीखता है और पुरुष भी—हिजड़ा दूसरों को रिझाता है और आप खुशी का ढोंग झूठा- दिखाने मात्र

का, करता है और पुरुष चाहे दूसरे को प्रसन्न कर सके या न करसके परन्तु आप तो गद्‌ गद्‌ हो ही जाता है, प्यारे हिजड़ापन छोड़ो पुरुष बनो, आल्हखण्ड सुननेवाले नपुंसक कमज़ोर होते हैं तो भी उन के दिल में हिम्मत, मर्दमी हो आती है, और थोड़ी देर या बहुत देर ठहरती भी है, रूप वती स्त्री की कथा वार्ता श्रवण करने वाला अपने शरीर में कामाग्नि सुलगती देखता है, लड़ाई का बाजा सुनकर या वीर और योद्धाओं की कथा सुनकर,कमज़ोर भी हथियारों के सामने बेधड़क जाता है प्यारे क्या वेदान्त सुनकर तेरेमें ' अहंब्रह्मास्मि ' की धारणा करवट भी नहीं बदलती? प्यारे तू कान से सुनता है अन्तःकरण में नहीं दाखिल करता ॥

ॐ

वैराग

हे मन ! आज तू ध्यान देकर सुन, तेरे कल्याण की बात है, तू जो इस मायिक, ऐन्द्रजालिक संसार में रात दिन भटकता फिरता है सो तू ने समझ रक्खा है कि इस में तुझ को पूरा सुख मिल जायगा ? यदि बिना समझे ही तू संसार में सुख के प्राप्त करने की कोशिश करता है तो तेरे मूर्ख होने में कुछ संदेह नहीं है और तेरी महनत निष्फल होगी , तुझ को तीन प्रकार की एषणाओंने घेर

रक्खा है या यों समझ कि तुझ को त्रिदोष का रोग है, जैसे स्थूल देह में वात, पित्त, कफ़ तीनों क्षोभ को प्राप्त हो जाते हैं तो अवश्य नाश को प्राप्त होता है तैसे यह तीनों एषणा वित्तेषणा, पुत्रैषणा और लोकेषणा भी जान, तू इस के कोप से अवश्य नाश को प्राप्त होगा. सुन; तू चाहता है कि मेरे स्त्री पुत्र, नाते दार , कुटुम्ब के लोग प्रसन्न और आरोग्य रहें– अब सोच कि वे क्या तेरी इस इच्छा से अपने कर्मों का भोग न भोगेंगे और क्या तेरी यह इच्छा पूर्ण हो जायगी ? और क्या अब तक किसी अंश में पूर्णता अनुभवी है ? क्या तेरी प्रजामें किसी को रोग या मृत्यु नहीं घेरते और क्या तू किसी को रोग वा मृत्यु से बचा सक्ता है ? यदि नहीं, तो तू ने इस इच्छा से आप को वृथा बांध रक्खा है और दुख भी बहुत पाता है–इस इच्छा को छोड़ ॥ दूसरी इच्छा तेरी यह रहती है कि मेरे पास धन, मकान, ज़मीन बाग़ बगीचे गाड़ी घोड़े बहुत होजावें सो समझ कर अच्छी तरह से देख कि अव्वल तो इस प्रकार का भोग प्रारब्धानुसार होता है और मानले [थोड़ी देर को] कि यदि यह सब ठाठ हो भी गया तो क्या तुझ को फिर पूर्ण सुख हो जाने की आशा है ? क्या ऐसे ठाठ से पूर्व किसी को पूरा सुख हुवा है या आज कल जो ऐसे ठाठवाले हैं उन को तू क्या पूर्ण सुखी देखता है और ऐसे ठाठ वालों का ठाठ क्या कभी नाश नहीं होता ? नाश होने पर जो उन को कष्ट होता है क्या तू उसका अनुमान करेगा ? यदि इन्द्रासन भी प्राप्त होजावे तो क्या वह हमेशः रहेगा ? क्या सुखों के नष्ट होते समय के कष्ट को

ज़रा विचारेगा तेरे पास एक लाख रुपया नहीं है इस समय को देख और एक लाख रुपया मिल जाने पर फिर देख अवश्य शांति में न्यूनता अनुभवेगा और यदि वह धन नष्ट होगया तो जो हाल तेरा होगा वह बहुत बुरा होगा, और क्या तू ने साधारण स्थिति वालों को रोने देखा है? हर्गिज़ न देखा होगा, इस इच्छा को भी छोड़। तीसरी इच्छा तेरी यह है कि सब लोग मुझे अच्छा २ कहें, क्या यह इच्छा पूर्ण होने की उम्मेद है? क्या राम, कृष्ण, वशिष्ट शुक, व्यास आदिक की दुनियां में कोई निन्दा करने वाला न मिलैगा? क्या यह दुनियां किसी की पूरी स्तुति करती है? क्या सब में कुछ न कुछ खोट निकालनेमें यह कभी चूकती है? जैसे बांस पर चढे नट की नीचे ढोल बजाने वाला नट कुछ न कुछ गल़ती ही बयान करता रहता है तैसे दुनियां का हाल है, इस इच्छा को भी छोड़, प्यारे मन! इन तीनों एषणाओं को त्याग करदे फिर सुख का अनुभव करैगा, यह इच्छा ही पूर्ण सुख प्रगट होने में प्रतिबंधक रूप हो रही है, और विचार कर देखेगा तो तुझे ज़ुरूर मालुम होगा। कि यह इच्छाएँ तू ने ऐसी मूर्खता की करी हैं कि जैसे कोई गँवार कौवे को साबन लगा कर बगला बनाने की कोशिश करै—यदि तू इन इच्छाओं को पूर्णतः त्यागदे तो अस्ली सुख प्रगट हो आवे यह निस्संदेह बात है—इस त्रिदोष की दवा विचार है और बद परहेज़ी प्रमाद है॥

ॐ ॐ ॐ

ॐ

क्यों नहीं सुनत हमारी—मनुआं ० टेक—
मांग २ टुकड़े घर* २ के तू बन गया भिखारी,
अबलों पेट भरा नहीं मूरख, नाहक तें झकमारी—मनुआं० ।१।
अब हूं मान भिखारी पन का, दे तू वेष उतारी,
हो निर्द्वंद्व बैठि निज घर में, ले तू जन्म सम्हारी—मनुआं० ।२।
अपना २ कर्म करत हैं, इन्द्रिय समझ विचारी,
कर मिथ्या अभि मान भला तू, क्यों पावे दुख भारी—मनुआं० ।३।
जो कर्त्ता है सो ही भर्त्ता, ले तू नीति विचारी,
इन्द्रिय कर्म करें तू भोगे, मूरख निपट अनारी—मनुआं० ।४।
नहीं तेरा संबध किसी से, त्यागो बुद्धि गँवारी,
तू सत् चित् आनन्द है मोधू, नित्य शुद्ध अविकारी—मनुआं० ।५।

विराट देह

अहाहाहा—मैं बहुत बड़ा हूं-मैं विराट आत्मा हूं-सहस्रशीर्ष और भुजा वाले पुरुषके विषयमें जो शास्त्र लिखते हैं वह पुरुष मैं ही निकला-लेकिन याद रहे कि एकशिरके देने से अनंत शिर मिले हैं-एक देह का दान किया तो अनंत देह प्राप्त हुवे-(प्राप्त तो पहिले भी थे परन्तु एक ही शरीर रूप बिल में घुसे २ नज़र नहीं पड़ते थे)-वृक्ष—सब वृक्ष मेरे केश हैं और सब पर्वत और पर्वत क्या ! जितने जंगम और स्थावर पदार्थ हैं सब मैं ही हूं मेरे और मैं में कुछ भेद नहीं है जैसे

* इन्द्रि रूपी घरों से, शब्दादि विषय टुकड़े

मृत्तिका का ही घटहै और मृत्तिका घटहै–कोई संशय नहीं
निस्संदेह यह सृष्टि मेरा ही देह है (प्र०) यदि तुमारा ही दे
है तो बताओ चन्द्रमा के मन्डल में इस समय क्या होत
है (उ०)प्यारे ! सच्चिदानन्द अब इन चक्रमों में नहीं आ
सक्ता है, आप किससे से पूछते हैं ? क्या आप मुझको ए
शरीर की हद्द में जान कर पूछते हो ? क्या मेरा एक है
अंतः करण में निवास है ? हर्गिज़ २ नहीं, मैं १४ भुवन
व्यापक होकर वहां २ के जुदे २ अंतःकरण आदि से वहां २ क
काम बराबर जानरहा हूं–और कररहा हूं क्या तुम एक परि
छिन्न अंतःकरणमें सर्वज्ञता देखना इच्छतेहो ? ऐसा नहीं हे
सक्ता है– तुम यह तो ज़रूर मानते ही होगे कि तु
इस ३॥ हाथ के शरीर के तो मालिक अवश्य हो-दोनों आं
तुमारी हैं फ़र्ज करो एक आंख में दर्द है क्या तुमारी दूसर
आंख उसका अनुभव करसक्ती है ? नहीं, इसी तरह अंतः
करण अल्प देशी होने से अल्पज्ञ है–तुमारे ही इलाके
दो नेत्र अपने २ सुखादि का पृथक् २ अनुभव करते हैं तै
मुझ एक ही महान् आत्मा के इलाके में अंतःकरण पृथक्
अनुभव करते हैं (प्र०) लेकिन हमारी दो आंखें हैं हम तो
दोनों का हाल कह सक्ते हैं (उ०) मैं भी चन्द्र लोक का हाल
जानता हूं और कहभी रहा हूं- आप मेरे एक अंग ही से
उत्तर चाहते हैं–सो क्यों ? पैर से कोई हाथका काम नहीं
ले सक्ता–दांत से जीभका काम नहीं लिया जाता- मैं अपने
शरीर के (अपने विराट शरीर से) चन्द्र लोक वाले भाग

से उत्तर दे रहा हूं–जैसे एक ही शरीर में जुदी २ इन्द्रिय जुदे जुदे विषयों का ग्रहण करती हैं-दूसरे के विषय का नहीं ग्रहण करतीं तैसे चन्द्रलोक का हाल पूछते हो तो ज़रा चन्द्र लोक की तरफ़-मुझ विराटके उस ओर आकर पूछो-तुमारी एक इन्द्रिय नासिका सूंघती है और जिह्वा रस लेती है जिह्वा सूंघ नहीं सक्ती और नाक रस नहीं ले सक्ती तैसे ही मेरे जुदे २ शरीर रूप इन्द्रिय हैं चन्द्रलोक के शरीर रूप इन्द्रिय से चन्द्र लोक का हाल जानता हूं और इस शरीर रूप इन्द्रिय से इस लोक का हाल ॥ जैसे एक शरीर में जुदी २ इंद्रिय हैं तैसे मुझ विराट के जुदे २ शरीर गोया इन्द्रिय हैं यह तुमारे सामने जो ३॥ हाथ का शरीर नज़र आता है इस को मैं एक कर्म इंद्रिय की तरह मानता हूं–जैसे व्यष्टि देह में अलग २ इंद्रिय होती हैं और वे सिर्फ़ अलग २ अपना काम करती हैं तैसे कुल विश्व नहीं नहीं अनंत ब्रह्मांडों के अनंत शरीरों में अनंत अंतःकरण मेरी इन्द्रियां हैं- इस अंतःकरण को मैं एक इंद्रिय की तरह धारण किये हुवे हूं जैसे तुम हर एक इन्द्रिय में पूर्ण होते हुए भी आंख से सुनने और नाक से चखने का काम नहीं लेसक्ते तैसे मैं भी अपनी इंद्रियों (अंतःकरणों)से अलग २ काम लेता हुआ सबके बीच में पूर्ण हूं–और मेरी इंद्रियां तरह २ की हैं–तुमारी इंद्रिया सिर्फ़ पांच ही प्रकार की हैं और मेरी और २ प्रकार की भी हैं–वृक्षों में मैं जल और ही तरह से पीता हूं वहां भोजन और ही प्रकार करता हूं–कहीं २ मेरी इंद्रिय सो रही

हैं कहीं काम कर रही हैं ॥ और यह अंतःकरण जिसको तुमने मेरा मान रक्खा है वह मेरी एक ज्ञान इन्द्रिय है और शरीर एक इंद्रिय की गोलक है जैसे व्यष्टि शरीर में इंद्रियों की गोलक नाक, आंख, कान, होती हैं तैसे—ॐ

ॐ

एक महाशय जी (समाजी)

महाशयजी—जीव और ब्रह्म एक हैं— यह वेदान्त का सिद्धान्त समझमें नहीं आता कारण कि जीव अल्पज्ञ और अल्प शक्ति सुख दुख का भोक्ता है और ब्रह्म सर्वज्ञ , सर्वशक्तिमान् दुख सुख का भोक्ता नहीं है (वेदान्ती) म० जी- ब्रह्म सर्वज्ञ भी है और अल्पज्ञ भी है— जो सर्वज्ञ होता है वह अल्पज्ञ भी अवश्य होता है (म०जी) एक ही पुरुष विद्वान् और मूर्ख कैसे कहा जा सकता है ? (वे०) इसका उत्तर भी आगे सुनोगे परन्तु यहां पर जैसे विद्वान् मूर्खका परस्पर विरोध है तैसे सर्वज्ञ और अल्पज्ञ का परस्पर बिरोध नहीं है—अधिकता और न्यूनता का ही, मात्र भेद है— देखो जो एक लक्ष की गिन्ती जानता है वह अल्प संख्या (दस) की भी गिन्ती जुरूर जानता है—ख्याल कीजिये कि जो सर्वज्ञ यानी सर्वका जानने वालाहो और वह अल्प को न जाने— तो फिर उसकी सर्वज्ञता ही क्या रही ? इस लिये जो सर्वज्ञ है वह अल्पज्ञभी ज़रूर होता है—और जो सर्व शक्ति मान है वह अल्पशक्ति भी होता है (इसी युक्तिसे), आप जानते कि स्वप्न की सृष्टि की- उत्पति, स्थिति और प्रलय किसमें

सिद्ध होती है ? क्या वहां आपके सिवाय कोई और है वास्तव में ? क्या आप यहां से कुछ सामान ले जाते हैं? माना कि स्वप्न सृष्टि पूर्व दृष्ट और श्रुत संस्कारों से ही भासआती है मिथ्या फिर भी उस मिथ्या की उत्पत्ति आदि आप में होता है या उसका स्थान-उस नाटक की रंग भूमि (Stage) आपके सिवाय कोई और है? [म०जी] हां मैं ही हूं (वे०)यानी उस मिथ्या जगत की उ० स्थि० प्र० आप से ही होती है-तो आप उस सृष्टि के ईश्वर हुए (म०जी) अच्छा....माना (वे०) प्यारे म०जी वहां आपके सिवाय तो कोई है ही नहीं तो यह मानना होगा कि वहां जो कुछ मिथ्या प्रतीत होता है जगत्–जीव–ईश्वर और सूर्य चन्द्र आदि भी, वह सब आप में ही प्रतीत होता है मिथ्या–भ्रम हुआ जैसे शुक्ति में रूपा या रज्जु में सर्प-या यों भी कहाजा सक्ता है कि वहां (स्वप्न) के ईश्वर भी तुम ही और अल्पज्ञ जीव भी तुम ही हो और पर्वत समुद्र भी तुमही हो, अब विचारो कि उस सृष्टि के ईश्वर तुम ही निकले दर असल, इतने पर भी वहां जीव वेष में, अल्पज्ञ वेष में, ३ ॥ हाथ ज़मीन के ठेके दारी के मिथ्या वेष में आप से कोई पूछे कि आप कौन हैं ? क्या आप ईश्वर हैं? तो आप अपने को अल्पज्ञ जीव ही कहोगे और सर्वज्ञ , सर्वशक्ति मान ईश्वर (उस सृष्टि की उ० स्थि० प्र० स्थान) होते हुए भी कहोगे कि हम ईश्वर कैसे होसक्ते हैं तो कहिये कि जो सर्वज्ञ होता है वही अल्पज्ञ है या नहीं । और आप ने कहा कि वेदान्त का यह सिद्धान्त समझ में नहीं आता सो म० जी समझ

(बुद्धि) में कैसे आसक्ता हैं यह तो बुद्धि से परे है, क्यों प्यारे म० जी गीता में आपने पढ़ा है कि परमात्मा बुद्धि से परे है तो भी आप उस को समझ में लाना चाहते हो ? . . स्याही की दावात में आप हाथी को रखना चाहते हैं ? अब सुनो–जैसे स्वप्न सृष्टि के तुम्हीं ईश्वर और तुम्ही जीव–तुम्हीं सर्वज्ञ और तुम्हीं अल्पज्ञ निकले तैसे ही यहां (जागृत सृष्टि भी जानो– जागृत और स्वप्न में भेद सिद्ध न हो तब तक प्यारे महाशय जी आप को मानना पड़ेगा कि ईश्वर, . . और जीव आप ही हो, नहीं नहीं आप में ई० जी० और जगत का मिथ्या भास रज्जु सर्पवत् होता है कारण कि जब आप जागते हैं तब उन में से कोई नहीं रहता, स्वप्न सृष्टि के ईश्वर जीव और जगत को आप निगल जाते हो, जैसे मदारी खेल (तमाशा) करते हुवे बड़े बड़े गोले निगल जाता है, और जैसे मदारी फिर मुँह से गोले निकाल देता है तैसे आप फिर सृष्टि, ईश्वर, और जीव , तीनों को पैदा करते हो और फिर स्वप्न की तरह कहने लगते हो कि जीव (अल्पज्ञ) ईश्वर (सर्वज्ञ) नहीं हो सक्ता है, म० जी वास्तव में तुम ईश्वर भी नहीं, जीव भी नहीं, जगत भी नहीं (कारण कि आप में आप ने तीनों की उ० प्र० देखी है) आप तो पर ब्रह्म – परमात्मा जिस के लिये वेद हाथ उठा कर कह रहा है' यतो वाचो निवर्त्तते अप्राप्य मनसा सह' और कृष्ण परमात्मा अपनी बांसुरी में गारहा हैं' न तद्भासयते सूर्यो (नेत्र का देवता) न शशांको (मन का

देवता), न पावकः (वाणी के देवता)। यद्गत्वा न नि
निवर्त्तंते तद्धाम परमंमम, वहहै—
जो कोई चटनी चाखकर (और मालूम होने पर कि इसमें
खटाई मिर्च नमक है) कहने लगे कि मिर्च खट्टी होती है
तैसे आप मन बुद्धि शरीर के साथ आपको दुखी जानते हो-
अलग मिर्च खाकर देखिये खटास के पत्ते भी नहीं- आप
अलग होकर (शरीर मन बुद्धि से) जरा आपको मुलाहिजा
कीजिये = या मैं याद दिलाता हूँ एकान्त अवस्था की यानी
सुषुप्ति की- कि आप कहिये आपको कुछ दुख था क्या!
(म० जी) भला इस सृष्टि को स्वप्न की तरह मिथ्या कैसे
मानें—बहुत भेद है, स्वप्न तो थोड़ी देर को होता है , दृष्ट
और श्रुत संस्कारों से रचा हुवा है–(वे०) तो म० जी स्वप्न
और जागृत सृष्टि में आप यही भेद बताते हैं न कि यह
जागृत सत्य है और स्वप्न ख्याली है (म० जी) हां (वे०)
आप का आगे का जन्म होगा या नहीं ? और होगा उस
शरीरादि की उत्पत्ति का उपादान कारण ? (म० जी) यहां
के कर्म (वे०) म० जी कर्म तो अनुष्ठान काल से अव्यवहित
उत्तर काल में नष्ट हो जाते हैं (म० जी) कर्म नष्ट होजाओ
उस के संस्कार तो रहते हैं (वे०) कहां ? (म० जी) मन
में रहते हैं उद्भूत (जागते हुए) और अनुद्भूत (सोते हुए)
रूप में वे ही उत्तर जन्म का हेतु हैं (वे०) तो महाशय जी
उत्तर जन्म का हेतु आप के मन में रहे हुए संस्कार ही हुए
स्वप्न सृष्टि का हेतु भी संस्कार ही हैं – मन में रहे हुए –
(म० जी) [विचारते हुए] हां हां ऐसा ही है (वे०) तो

स्वप्न शरीर या सृष्टि और पर लोक की सृष्टि दोनों एक मे
ही हुए—उपादान कारण दोनों का एक ही है, यानी संसार
इस लिये (म०) हां, इस से तो यही पाया जाता है [वे०]
म० जी यह वर्त्तमान शरीर और वर्त्तमान सृष्टि भी किसी
पूर्व शरीर के मनोगत संस्कारों ही की रचना होगी!
[म० जी] .... हां— तो तो यह मालूम हुआ कि
जरूर जागृत और स्वप्न में भेद नहीं है (वे०) फिर कहि
म०जी क्या कर्त्तव्याकर्तव्य रहा ? (म०जी) कुछनहीं रहा
परंतु शास्त्रों में जो बंध और मोक्ष की व्यवस्था है वो
फिर न रहेगी यह बड़ी खराबी होगी और तो कुछ नहीं
(वे०] आप को म० जी बहुत चिन्ता हुई इस की, एक
आदमी कहता था कि भाई यदि दुनियां में मुझ को य
किसी और को आरोग्यता प्राप्त हो जावे तो है तो आनन्द
की बात परंतु एक बड़ी भारी खराबी होजावेगी उस की
चिन्ता है दूसरे आदमी ने पूछा भाई क्या खराबी होजा
गी ! तो उस ने जवाब दिया कि फिर वैद्यक के ग्रंथों और
अस्पतालों की व्यवस्था निष्फल हो जावेगी— म०
क्या वैद्यों की खातिर के लिये हम को अपथ्य भोजन क
ना चाहिये इस बंध मोक्ष के मंतव्य ही ने तो लकड़ा ब
रक्खा है [म० जी] लेकिन कहीं पीछे कुछ और निक
पड़े और आप का कहा हुआ यह सिद्धांत झूंठ निकले
[वे०] तुम्हारा खुद का मन भी मेरा सहमत है या नहीं
[म० जी] हां इस समय तो है ले .... [वे ०] अच्
जो कोई शंका पैदा हो तो कृपा कर के मुझ से पूछना अ

ब तक तो इसी सिद्धांत (सुख शय्या) पर कायम रहो [म० जी, हँस कर] अच्छा महा राज .... अब रजा इजाजत] (वे०] अच्छा नारायण ॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म

देखो एक सुवर्ण की मूर्ति सामने रक्खी है उसके हाथ में बाँसुरी है (सुवर्ण ही की) अब इस मूर्ति में चेतनता और जड़ता का विभाग करो- किसकी मूर्ति है ! एक बाँसुरी बजातेहुए पुरुष की है इसमें पुरुष तो चेतन है और बाँसुरी जड़ है- कारण कि पुरुषमें जीवत्व है और बांसुरी में जीवत्व नहीं है ॥ अरररररर कैसी भारी गलती हो गई है प्रिय जिन दो चीज़ों का आप नाम लेते हैं यानी पुरुष का और बांसुरी का और फिर उनमें चेतनता और जड़ता बताते हैं—वह कहां है ? शुद्ध सुवर्ण सामने मौजूद है— यदि इस जगह पुरुष और बांसुरी है तो उस को उंगली रखकर तो बताओ। प्यारे न पुरुष है (चेतन) न यहां बांसुरी है (जड़) यहां तो सुवर्ण है, चेतन जिसको कहते हो वह भी सुवर्ण और जड़ जिसको कहते हो वह भी सुवर्ण, सुवर्णही को पुरुष (चेतन) और बांसुरी (जड़) रूप में देखते हो ऐसा होनेपर भी सुवर्ण ज्यों का त्यों है पुरुष और बांसुरी की कल्पना से सुवर्ण विकार को नहीं प्राप्त हुआ-नाम रूप कल्पित हैं जब नामरूप कल्पित हुए तो फिर जड़ और चेतन

भी कहां रहे। कल्पित सर्पके नेत्रभी कल्पितही होते हैं ॥

अब विचारो, स्वप्न सृष्टिमें आप चेतन और जड़ पदार्थ को देखते हैं वहां आदमी हाथी घोड़े को चेतन जानते हो और ईंट पत्थरों को जड़ बताते हो क्या वे नाम रूपा-त्मक पदार्थ वास्तविक हैं ? यदि नहीं, तो उनका चेतनता और जडत्व भी वास्तविक नहीं हुआ—अब कहिये चेतन किसे कहते हो और जड़ किसे ? जिसको तुम दो भावों से (चेतन और जड़) देखते थे वह तो तुम ही थे जैसे सुवर्ण है (पुरुष और बांसरी में) और जैसे स्वप्न में तुम ही, विन विकार को प्राप्त हुए चेतन और जड़ की नाईं भासते थे तैसे यहां इस वक्त भी तुम ही विकार को न प्राप्त होते हुए मनुष्य हाथी घोड़ा आदि चेतन रूप और ईंट पत्थर आदि जड़ रूप भासरहे हो यह जड़ और चेतन रूप सृष्टि कल्पित है सुवर्ण में मूर्त्तिवत् या स्वप्नद्रष्टा में स्वप्नवत् और तुम (तुमारा लक्ष्य-मैं कालक्ष्य) ही सत्य हो तुम ही पहाड़ नदी समुद्र हो—यह सृष्टि आत्म रूप ही है जैसे स्वप्नसृष्टि स्वप्नद्रष्टा रूप है और भूषण सुवर्ण रूप है—वेद कहता है 'अयमात्म ब्रह्म' तो क्या सिद्ध हुआ ? यह कि सब जो सामने भासत है आत्मा (तुम) या ब्रह्म है और ब्रह्म सांसारिक मिथ्या ज चेतनों की नाईं नहीं है वह संसारिक जड़ और चेतनों सत्तास्फूर्त्ति देने वाला है अर्थात् चेतनों का भी चेतन है अ यह संसार उसी का विवर्त्त है यानी वह ब्रह्म ही है घट, हाथी, पहाड़, समुद्र, मैं.तू, पापी, जापी, ज्ञानी, अज्ञानी, यह तने नाम और रूप हैं वह ब्रह्म ही है 'सर्वं खलु इदंब्रह्म' ॐ अ

सूर्य चन्द्र क्या-अनंत ब्रह्माडोंके भी तुम्हीं मालिक हो

प्रश्न—हम शरीरके मालिक तो जुरूरहैं लेकिन सूर्य चंद्रादि के मालिक नहीं होसक्ते हैं कारण कि हम चाहें कि सूर्य या चन्द्रमा को हाथ में रखकर गेंद की तरह उछाल २ कर खेलें तो ऐसा नहीं कर सक्तेहैं गाड़ी हमारी है घोड़ा भी हमारा है लेकिन यह आकाश में अनंत तारे सूर्यादिक हमारे हैं यह कैसे संभव हैं !

समाधान—क्या आप गेंद की तरह सूर्य,चन्द्र को नहीं उछाल रहे हो अगर आप को ऐसा भान नहीं होता है तो हे महाराजाधिराज विश्वपति ज़रूरइस वक्त तुमएक हीतुच्छशरीर केकम्पोन्ड में अपने को समझते हो जैसे समुद्र की एक तरंग कहे कि समुद्र की सब तरंगों का मालिक कोई और है तो जान लो कि उसने आप को जल नहीं जाना सिर्फ़ महदूद तरंग भाव में ही उसको परिच्छन्न अहंकार है-एक शरीर और दिमाग़ में ही मत बैठे रहो-भगवन ! सर्व शरीर तुमारे ही हैं- थोड़ी देर को मानो कि आप सूर्य को हाथ में गेंद की तरह नहीं ले सक्ते, तो क्या आपकी मालिकी दूर हो जायगी? यदि ऐसा हो तो क्या आप अपने गाड़ी घोड़े को हथेली पर रख सक्ते हो ? क्या अपने एक शरीर के सिर को भी हाथ में गेंदवत् ले सक्ते हो ? क्या इस शरीर के अन्दर का एक २ भाग आपको दीखता है ? क्या आपको पेटकी नसें

दीखती हैं और क्या उनको अपनी पैन्सिल की तरह हाथ में ले लेसकते हो? अगर नहीं, तो भगवन फिर आप शरीर के मालिक भी क्यों बनते हो ? तुमको पेट की नसें न दीखें तो भी, सिर से गेंद की तरह न खेल सको तो भी आप शरीर के मालिक हो और नाक को उखाड़ कर सर पर न लगा सको तो भी तुम सर्व शरीर के मालिक हो तैसे ही हे विराट स्वरूप आत्म भगवान सूर्य चंद्र का भी तू ही मालिक है–ऐसा कायदा है कि घोड़े स्तबल में ही रहा करते हैं मालिक की पॉकिट में नहीं रहा करते–मकान और कमरे दीवानखाने अपनी २ जगह रहते हैं मालिक के सिर पर नहीं रहते–जो जिसके लिये जगह होती है उसी जगह वह चीज़ रहती है तैसे सूर्य चंद्र घोड़ों की तरह तेरे स्तबल रूपी आकाशमें बंधे हुए हैं और अपनी नौकरी (डियूटी) पर हाज़िर है तमाम प्रकृति तेरी सेवा में हाज़िर है–यह स्थूल दृष्टि लेकर कहा और वास्तविक–सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर देखे (शरीर की कोठरी से बाहर भी आपको मानकर) तो सूर्य चंद्र आदि जो फासले पर दीखते हैं वह बिलकुल इसी प्रकार हैं जैसे तेरे नाक, आंख, कान, सिर और हाथ पेट और पीठ में तुझे (व्यष्टि स्वरूप में) भेद दीखता है–नाक कान सिर हाथ पेट, पीठ में भेद और भिन्नता देखने पर भी तू उनका मालिक है और तुझसे सब बराबर ही फासले पर हैं और ज्यादः गौर करो तो देखने पर सूक्ष्म दृष्टि देखा मिलानी से तिल भर भी दूर नहीं है तैसे

हे समष्टयाभिमानी विराट रूप आत्मन् सूर्य चंद्र समुद्र और समुद्र में छः २ आठ २ नौ २ मील की गहराई में रहने वाले मच्छ भी तुझ से इतने ही दूर हैं जैसे व्यष्टि देह में तुझ व्यष्टयाभिमानी से आंख और दांत और जीभ दूर हैं, और हे विश्वपति हर इलाके में तेरे इलाके दार मन वगैरः अपना २ काम देख और जान और कर रहे हैं विशेषरूपसे काम की खबर रखना और जानना और करना तेरे अपने २ इलाके के मुलाजिमों का यानी मन वगैरः का काम है तेरा नहीं है तू तो सब को सत्ता स्फूर्ति देने वाला अक्रिय निर्विकार ज्ञान रूप है बंबई इलाके के अमुक जिलेमें अमुक तहसील के अमुक परगने के अमुक गांव का अमुक खेत कितना बड़ा है? यह जानना बादशाह का काम है? हर्गिज हर्गिज नहीं तैसे ही भगवन आप सब के मालिक हैं सूर्य चन्द्र तो क्या अनन्त ब्रह्मांडों के मालिक आप ही हैं दूसरा नहीं, इस शरीर की आप को जियादः खबर है सो आप यहां के इलाके दार के साथ ऐसे मिल कर देखते हो जैसे पानी दूध में मिल कर आप को भी मलाई दार जाने, ऐसे ही सब इलाकों में मन के भीतर घुसे २ आप ही गुप्त होली खेल रहे हो हे विश्व नाथ! ब्रह्मांड भर के चेतन व जड़ पदार्थों पर लगी हुई स्पष्ट अपनी मुहर को पहिचानले कि तेरी मुहर है या किसी और की है? तू आप को मैंमैं जैसा इस इलाके में कहता है तैसा ही मैं मैं यह मुहर राज्य भर [ब्रह्मांड भर] में देखले—मुहर को उल्टा बांचेगा तो धोखा होजायगा, उल्टी बांचने से मैं का तू बांचा जायगा—

शरीर रूपी (स्थावर जंगम सभी) कागजों पर जिधर से मुहर लगाई है तेरे इलाकेदार ने, उधर से ही वांच- (अगर इस पत्र को दूसरी तर्फ से वांचोगे तो गडबड़ हो गी और इधर से जिधर में लिखता हूं वांचोगे तो ठीक वांचा जायगा] तात्पर्य कि भीतर की ओर से वांच बाहर की ओर से मत वांच, कारण तेरा कारिंदा भीतर से मैं की मुहर लगाता है अर्थात भीतर से बोलता है कि' मैं ' तू भी उस के उसी तर्फ से [भीतर की ओर से] वांच और विश्व भर के शरीरों पर देख, क्या पहाड़ और क्या समुद्र, क्या सर्प और क्या गारों में गर्जते हुये सिंह, क्या फूल और क्या घास, सब पर हे विश्व नाथ तेरी मुहर लगी है फिर भी हे भोले महेश ! तू आप को जीव, तुच्छ , परिच्छिन्न, एक ही इलाके का मालिक समझने लगा, शायद पार्वतीजी ने आज गहरी छानी होगी, ले खटाई :- ' तत्वमासि अयमात्माब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि , प्रज्ञानमानन्दंब्रह्म और होजा खड़ा इस आसन (शरीर] से और गा [मत्तः पर तरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय, मयि सर्व मिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव] मैदान (चिदा काश रूप में स्थित हो कर] में खड़ा हो कर

ॐ ॐ ॐ
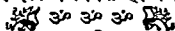
स्वा० जी धातु और अग्नि मत छूना

जब तक पति की प्राप्ति नहीं होती तब तक छोटी लड़कियां गुड्डे और गुड़ियों से खेला करती हैं, जब तक बच्चे को अक्षर लिखना नहीं आता तब तक

तरुनी पर किट किन्ने मीवता है तैसे ही जब तक यथार्थ
बोध नहीं होता तब तक सोना चांदी लोहा पीतल आदि
धातुओं के छूने का और अग्नि के छूने का निषेध है, वास्तव
में चांदी सोना आदि धातुओं के न छूने से और अग्नि के
न छूने से सन्यासी नहीं होता श्री स्वा० शंकराचार्य जी
कहते हैं कि' अहं ममेति, योभावो, देहाक्ष्यादावनात्मनि,
अध्यासोयं निरस्तव्यो विदुषा स्वात्म निष्ठया' अर्थ—यह कि
शरीर और इन्द्रिय जो आत्मा नहीं हैं (अनात्मा हैं) उन
में जो, मैं और मेरा' यह अध्यास (भ्रांति) हो रहा है वह
अध्यास दूर करना चाहिये। यह अध्यास विद्वान् कैसे दूर
करें ? अपने स्वरूप में स्थिति करके। वास्तव में सप्त धातु-
ओं का समुदाय जो शरीर है उस के स्पर्श करने का निषेध
श्री भाष्यकार स्वामी ने कहा है, तात्पर्य यह कि' मैं शरीर
' इस मलिन वासना को दूर करना चाहिये और' सप्त धा-
तुओं के समुदाय रूप शरीर से मेरा कुछ संबंध नहीं है मैं
तो असंग हूं ' यह धारणा पकाना चाहिये—चांदी सोना यदि
शरीर से छुआ जावे तो कुछ दुख नहीं प्रतीत होता यह
स्पष्ट है और सप्त धातु रूप — शरीर छुआ जावे यानी ' मैं
शरीर हूं या मेरा शरीर से संबंध है' इस भावना से प्रत्यक्ष
दुख भासता है—जन्म मरण का दुख—मान अपमान का दुख,
हर्ष शोकादि रूप दुख शरीर रूप सप्त धातुओं के छूने यानी
संबंध मानने का फल है—

अग्नि के छूनेसे ताप लगता है, शरीर के साथ संबंध मान-

ने से भी ताप लगता है, अग्नि के छूने से एक प्रकार का ही ताप होता है और शरीराध्यास से अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव तीन प्रकार के ताप लगते हैं इस वास्ते सन्यासी को चाहिये कि इन तीन प्रकार के ताप देने वाली अग्नि को (शरीर में हूं—इस बुद्धि को) न सेवै, और जो उपरोक्त धातु और अग्नि का स्पर्श न करैगा वह निस्संदेह मुक्त रूप ही है, इस विषय में सारग्राही दृष्टि रख कर व्यर्थ आग्रह कर्त्तव्य नहीं है कारण कि यतिवर भूप श्री स्वा० शंकराचार्य्य जी ने कहा है कि जैसे हो सके तैसे उपरोक्त शरीराध्यास ही को दूर करे और शास्त्रों के गोरख धंधे की किंचित् भी परवाः न करे तहां श्लोक :—

लोकानुवर्त्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्त्तनं ।
शास्त्रानुवर्त्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु ॥
लोकवासनया जन्तो शास्त्र वासनयापिच ।
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥

ॐ ॐ ॐ

मन को कैसे शांत किया जावे ?

मन के शांत करने के उपायः—ब्रह्माभ्यास (१) वासना क्षय (२) मन को रोकने की चिन्ता का त्याग (३) प्राणायाम से भी ठहरता है परंतु प्राणायाम का प्रेरक मन है न कि

प्राणायाम मन का प्रेरक,कारण कि मनमें सत्वगुण प्रधान होने के कारण ज्ञान शक्ति है और प्राण में रजोगुण प्रधान होने के कारण केवल क्रिया शक्ति है—ज्ञान शक्तिवाला प्रेरक होता है और क्रिया शक्ति वाला प्रेरित होता है—

ब्रह्माभ्यासः—सत् शास्त्र और सत् गुरू के वचन (महा वाक्य तत्वमसि) में पूर्ण विश्वास सहित' अहं ब्रह्मास्मि (मैं अजर, अमर, निर्गुण, देश काल वस्तु परिच्छेद से रहित, द्रष्टा, साक्षी, कूटस्थ, निर्विकार, असंग निरामय निरंजन, जाग्रदादि तीन अवस्था रूपी नाटक का देखने वाला ब्रह्म हूं) यह भावना करना—यह सब से सुगम और बढ़िया उपाय है'अहंब्रह्मास्मि' इस भावनारूपी आमनमें उठते ही तभी संकल्प विकल्प रूपी मनपैदा होता है मजबूती से, बल करके शिवोहम् यह भावना करो, चौबीसों घंटे दुनिया के काम होते हुए भी यह भावना जाग्रत रक्खो, जैसे आफ़िस में काम करते हुए भी प्रिय पुत्र वा स्त्री का फ़ोटो आंखोंसे नहीं हटता तैसे यह भावना 'कि मैं ब्रह्म हूं और ज़रूर हूं—वेद, गुरू मेरे अशुभ चिन्तक, धोके बाज़ नहीं हैं उन का कहना ज़रूर सत्य है, मन से न हटे—यह भावना मन में ही होगी लेकिन परिपक्व होने पर मन का नाश करके आप (ब्रह्म रूप) ही रह जावेगी—यह भावना शुरू हुई तो जानो कि मनकी जड़ में घुन लगना शुरू हुआ—पेट में (गर्भ में) खबर आया तो जान लो कि किसी दिन उस की माकी मृत्यु हुई धरी है और आप ही आप रहेगा—तैसे प्यारे इस मन को 'अहं ब्रह्मास्मि'

रूप गर्भ रखाओ और उस को पकने दो—मन की खैर नहीं—

वासना क्षयः—यह मन आत्मा के सामने ऐसे है जैसे सूर्य के सामने बादल—जितना जितना बादल गहरा होगा उतना उतना ही सूर्य को अधिक छुपावैगा और जितना जितना हलका होगा उतना उतना कम ढकेगा—इस लिये मन रूपी बादल को हलका करो हलका होते होते बिल्कुल इति श्री को प्राप्त होगा—इस को भूखा मार दो, खाने को मत दो—इस का भोजन है शब्दादिक विषयों का विचार, और राग पूर्वक शब्दादिकों का विचार इस के लिये महान पुष्टिकारक भोजन है ऐसे भोजन से दिन दूना रात सवाया बढ़ता है शब्दादिक विषयों में अनित्यता रूपी विष बता कर पहले इस का राग (पौष्टिक आहार) कम करो, इतना करने से ही बहुत ढीला हो जायगा फिर उन विषयों का विचार मात्र भी (सादा खुराक) बंद कर दो—

मनको रोकने की चिन्ताका अभावः—तू मनकी तर्फ देखे ही मत, जैसा हो तैसा हो, भला तुझे उस से संबंध ही क्या? तू चेतन वह जड़, भौतिक, उस के शांत करने का फ़िक्र ही उसे अधिक पुष्ट करता है — प्यारे, जैसे चन्द्रमा से चन्द्र मुखी कमल पुष्ट होते हैं तैसे तेरी दृष्टि से मन अधिक पुष्ट होता है तू मौज में रह मन का विचार ही छोड़ दे—आप सूख जायगा—

प्राणायामः—प्राण (बहिर्मुख श्वास) और अपान (अंतर्मुख श्वास) की ओर ध्यान मत दे, न नाक बंद करके

विचारी हवा को रोक- चंचल वस्तु पर ध्यान करने से मन चंचल होता है सिर्फ उस की ओर देख जहां प्राणलय होकर अपान संज्ञा को नहीं प्राप्त हुआ और अपान लय होकर प्राण संज्ञा को नहीं प्राप्त हुआ दोनों की संधियों पर वृत्ति रख वह संधियां स्थिर रूप, प्राण आपान के उत्पत्ति लय का स्थान हैं स्थिर वस्तु पर दृष्टि रखने से वृत्ति स्थिर हो जाती है—

ॐ ॐ ॐ

जगत् मिथ्या है स्वप्नवत्

सच्चा और सुखदायक—रमणीय क्यों मालूम होता है ?
और स्वप्न भी सत्य और रमणीय क्यों भासता है ?

सांच को आंच नहीं सच को कितनाही दबाओ—जाहिर हुए बिना नहीं रहता है—प्यारे जाग्रत स्वप्न में, जो तुम सृष्टि के रूप में (वेष) देखते हो वह क्या है ? वही तुमा । आत्मा परमात्मा—सच्चिदानन्द ही तो है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' 'सर्वं ह्यनद् ब्रह्म' ।

प्यारे ! जब तुम स्वप्न देखते हो तब क्या होता है ? वह स्वप्न सृष्टि क्या है ! तुमारा ही ज्ञान बटजाता है नहीं नहीं बटे हुए की नांई भासता है-वह स्वप्न सृष्टि तुमारा ही रूप, आत्मा है—तात्पर्य यह कि स्वप्न में तुम अपना ही दर्शन करते हो और आत्मा यानी तुमारा रूप तो सत-चित आनन्द है इस वास्ते स्वप्न सृष्टि गत नाना प्रकार के नाम रूपों के पर्दे में तुमारा ही आत्मा है—जैसे पुष्प की रक्तता

स्फटिक के अन्दर भासती है तो उस समय श्वेत स्फटिक भी रक्त ही प्रतीत होता है तैसे ही स्वप्न और जाग्रतगत नाम रूप संसार में आत्मा की सत्यता भासने से मिथ्या नाम रूप भी सत्य प्रतीत होते हैं जैसे धनाढ्य के गले में मुलम्मे की जंजीर भी सत्य—खरे सोने की जचती है तैसे आत्म देव रूपी चक्रवर्ती के गले में मिथ्या सृष्टि भी सच्ची प्रतीत होती है—विषय भोग रमणीय—सुखरूप भासते हैं सो भी इसी प्रकार हैं—विषयों (शब्दादिक) में प्रीति मालूम होती है सो वह प्रीति भी तुम आत्मा में ही कर रहे हो-जिस बच्चे पर तुमारा ममत्व यानी छाप (मुहर) लगी होती है वह कैसा ही बदशकल हो गलीज़ हो लेकिन उस का मुख कैसी प्रीति से चूमलेते हो और जिस पर हे आत्म देव ? तेरी शाही मुहर यानी ममत्व नहीं है वह निहायत रूपवान स्वच्छ भी हो तो भी वैसा नहीं मालूम होता है—तात्पर्य सब का यह हुआ कि पदार्थों (झूंठे पदार्थों) में सत्यता—स्थिरता सुख मालूम होता है वह आपका—आत्मा का है—जिसपर आप का दिल आजावैगा यानी आपकी मुहर लग जावैगी वही जगमगाता भासैगा—चाहे बदसूरत हो-तो भी, और जिसपर से आप अपनी मुहर उठालेंगे वही भद्दा होजायगा चाहे भली सूरत हो, तो भी, रज्जु में सर्प भासता है और और वह सत्य मालूम होता है उसका कारण ? यही कि आप की दृष्टि के सामने रज्जु पड़ी है वह सत्य है इसी प्रकार वास्तव में तुमारे आगे अस्ति, भाति, प्रिय रूप आत्मा ही

है–हर एक आदमी सृष्टि को सत्य, स्थाई कहता है और अगर उस से पूछो कि नाम रूप तो बदलते रहते हैं सत्य नहीं है तो उस के लिये भी' हां' कहदेगा–भला यह क्या पागलों की सी बात हुई ? आप ही जगत् को सत्य कहना है और आप ही जगत् (नाम रूप) को मिथ्या, बदलने वाला कहता है–असली बात यह है कि जगत् में' अस्ति, भाति, प्रिय' अंश तो सत्य है और' नाम रूप' अंश मिथ्या है विचारवान इस रमूज़ को जान लेता है और अविचार–वान मिथ्या और सत्य को गड़बड़ में डाल कर खुद गड़बड़ में पड़ जाता है–५०) की क़ीमत का स्टाम्प कैसी होशियारी से रखते हैं अगर उस पर बादशाही मुहर न हो तो =) दस्ता मिल जावे–अब कहो क़ीमत काग़ज़ की है या शाही मुहर की ? इसी तरह नाम रूप संसार तुच्छ है लेकिन आत्मा रूपी खुदाई मुहर के साथ में प्यारा और सत्य दीखता है—

ॐ ॐ ॐ

चोर से कहो चोरी कर—
शाह से कहो जागता रह

क्यों प्रभु यह क्या तमाशा करते हो–ऊपर की मसल आप पर फबती है–आप ही ने तो मन बना दिया, कैसा ? कि जिसका रोकना वायु के रोकने

से भी कठिन है और आपकी ही आज्ञा यह कि मन को रोकने वाले को मैं दर्शन देता हूं–प्रभु–आपतो सर्व शक्तिमान हो और दयालु भी हो फिर कहो आपने तमोगुण क्यों बनाया ! क्या आपको सर्व जीवों के अंतःकरण सतोगुणी बनाने की सामर्थ्य नहीं थी ! और क्या आप दयालु होने से सर्व के शुभ चिन्तक नहीं थे! फिर कहो कि आप ने यह नर्क जाने का वाहन तमोगुण क्यों रचा ? और हे नाथ ! इस पर भी आप दयालु कहाते हो ? मेरी समझ में नहीं आता कि आप दयालु किस्तरह हो यदि किसी के मतानुसार कहो कि तीन गुण प्रकृति के अनादि हैं मैंने नहीं बनाए तो हे प्रभु आप तो सर्व शक्तिमान हैं क्या आप को उनके नाश करने की सामर्थ्य नहीं है . कृपा कर तम का अभाव ही कर दीजिये—और सर्व जीव मोक्ष मार्ग लें ऐसे उनके अंतःकरण कर दीजिये–अगर नहीं, तो फिर आप अपने दो नामों [सर्व शक्तिमान और दयालु] को न राखिये क्योंकि आप में उनके लक्षण घटते नहीं हैं, भले दयालु पिता हुए कि सर्वशक्तिमान् होने पर भी अपने पुत्रों (जीवों) की पीड़ा देखते हो, प्रभु की ओर से आकाश वाणी—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु ,
न कर्म फल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते—

ॐ ॐ ॐ

ॐ
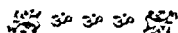
स्वामी जी महाराज

ओ स्वामीजी—महात्माजी ओ सन्यासी जी महाराज जब आप को घर बैठे हो (आसन पर) अयाचित्त भिक्षा मिलती है तो पांच घर या ७ घर से भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा त्याग दो यह मुहल्ला (इन्द्रिय ग्राम) जहां आप भिक्षा मांग रहे हैं जादूगरों का है जादू के जोर से ऐसा भास करा देते हैं कि 'भिक्षा मिली ; लेकिन देते नहीं हैं न मानो तो देखलो कितनी मुद्दत गुजर गई और मांगते २ थक गये फिर भी पेट खाली [विषयों मे तृप्ति नहीं हुई] इस मुहल्ले से चल दो और इस भिक्षा पात्रको भी [अंहकार को] फोड़ दो यह तो भीख मांगने वालों को चाहिये सन्यासियों को त्यागियों को इस की क्या जुरूरत है तुमारे तो आसन पर ही भिक्षा मौजूद है (अपनी महिमा में विराजो) ॥

ॐ ॐ ॐ

आराम गाह के दरवाज: पर न शोर मचा

हे प्यारे स्तोत्रों के पाठ मात्र से- गीता के- विष्णु सहस्र नाम के पाठ मात्र से तुझ को परमात्मा का दर्शन न होगा- यदि परमात्मा का दर्शन किया चाहता है तो किसी ब्रह्म निष्ट महात्मा की शरण को प्राप्त हो- और सेवा कर- कृष्ण परमात्मा कहता है' तद्विद्धि प्रणि-

पातेन परि प्रश्नेन सेवया, वह परमात्मा जड़ पदार्थों के बीच में बैठा हुआ तुझसे मुलाक़ात न करेगा- बादशाह दर्बारी पोशाक पहन कर और दर्बार में स्थित होकर ही किसी से बात करता है और जब दर्बारी पोशाक उतार कर महलों में बैठा होता है तब किसी से नहीं बोलता-अरे-बावले! तू क्यों उसके महल के दरवाज़ः पर आवाज़ देरहा है वह तो उसकी एकान्त कुटी है- देख तो सही- उसने अपनी दर्बारी पोशाक (अंतःकरण इन्द्रियादिक) उतार रक्खी हैं- हट, हट, हट जा यहां से- और दर्बार में उससे मुलाक़ात कर इस एकान्त कुटी में जवाब न मिलैगा और यदि मिलैगा भी तो यही कि 'दर्बार में हाज़िर हो ' यानी ज्ञान प्राप्त करो प्यारे इस बात को अच्छी तरह समझ रख कि बग़ैर गुरू के आत्मा का अपरोक्ष नहीं होगा श्री शंकरस्वामी कहते हैं

ऐक्य परे श्रुति वाक्यैरात्मा शश्वत् प्रकाश मानोपि।
दैशिक दया विहीनैरपरोक्षयतुं न शक्यते पुरुषै
कर्मभिरेव न बोधः प्रभवति गुरुणा विना दया निधिना
आचार्यवान् पुरुषो वेदेत्यर्थस्य वेद सिद्धत्वात् ॥

प्यारे हाथ कंकण को आरसी क्या? वेद कहता है, तत्वमसि मानले मानले और बोल' अहं ब्रह्मास्मि ॥ आप को जानने के वास्ते तुझको किसी साधन की आवश्यकता नहीं है॥

ॐ ॐ ॐ

कहताहै कि 'तू कर्त्तापन का अभिमान छोड़दे' वास्तव में तू कुछ नहीं कर्त्ता है प्रकृति के गुणों में क्रिया होती है तू कर्त्ता मान कर क्यों व्याकुल होता है? क्यों थकता है? 'अहंकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते, तथात्मानमकर्त्तारं यः पश्यति स पश्यति प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहःकिं करिष्यति, प्यारे यदि तू हमेशः ही कर्त्तापन का अभिमान न रक्खे हमेशः ही अपने शांति रूप आसन पर बैठा रहै तो प्रकृति के गुण-मन-बुद्धि शरीरादि तो क्रिया करते ही रहेंगे (प्रकृति तुझ महाराज के सामने नृत्य करती ही रहेगी) परन्तु तू अभिमानी बन कर जो मुफ्त का भार सर पर उठाता है उससे बच जायगा गवांरू मसल है कि 'हाथ में काम और मन में राम ' तात्पर्य यह कि शरीरादि में क्रिया होने दे और तू राम में यानी अपने निष्क्रिय–द्रष्टारूप, साक्षीरूप, आत्मारूप में स्थित रह–'मैं कर्त्ता हूं, इस मिथ्या बोझ को सर से फेंकदे और 'इसका फल क्या होगा? 'यों हो तो अच्छा है–कहीं ऐसा न हो जाय' यह फ़िक्र कर्त्तापन के अभिमान के साथ ग़र्क़ होजायगा– यह सर्व काम मन के हैं–अंतःकरण के हैं और तू अंतःकरण के साथ ऐसा तन्मय होगया है जैसे दूध के साथ जल मिल कर दूध ही सा दीखता है तैसा–तू निर्विकार–कूटस्थ–साक्षी सत्ता स्फूर्त्ति देने वाला है–तू उन से मिलकर उनके गुणों को मत ग्रहण कर 'चने के साथ घुन को मत पीस, अगर वेदान्त के कहने पर नादानी से उल्टा अमल करेगा तो बहुत कठिनता होगी और कर्त्तापन के अभिमान की जगह अकर्त्तापन का

प्यारे जब तुमको आनन्द का अनुभव होता है, जब तुमको विषयों के प्राप्त होने पर आनन्द भासताहै, तब ज़रा ध्यान पूर्वक देखो कि वह आनन्द शब्दादिक विषयोंमें से निकलता हुआ तुमारे अनुभव में आताहै या शब्दादिक विषय सिर्फ़ निमित्त मात्र ही हैं ? यदि ध्यान पूर्वक देखोगे तो तुम को साफ़ तौर पर माल्हूम होगा कि वह आनन्द तुमारे अन्दर की तरफ़से ही आताहै शब्दादिक विषय तुमारेही अन्दर तुमारे ही घर में सोते हुए आनन्द के भंडार को जगा देते हैं या इस प्रकार सें समझो—नहीं २ दो मिनिट के वास्ते चुप हो कर इसी समय सच्चिदानन्द की बात को अनुभव द्वारा देखो तो तुमको स्पष्ट ज्ञात होगा कि जैसे किसी वर्त्तन, हौज़ या तालाव में का जल किसी कारण से छलक कर वाहर आता है तैसे तुमारे ही अंदर से आनंद छलकने की तरह वाहर माल्हूम होता है यदि ध्यान से देखोगे तो तुमको इसी वक्त स्पष्ट भासेगा कि आनन्द का भान अन्दर से वाहर को होता है न कि वाहर से भीतर को—तुमको मालुम होगा कि आनन्द का रुख़ वाहर की ओर होता है—यदि वाहर से आना तो भीतर की तर्फ़ रुख होना चाहिये था—अब आप को माल्हूम हुआ कि आनंद किधर से चमकता है ? अब तुमको माल्हूम हुआ कि जिस आनंद की ख़ातिर पागल बने फिरते हो वह आपके ही अंदर है ज्यादः ध्यान से देखोगे तो माल्हूम होगा कि वह आनंद ख़ुद तुम ही हो क्योंकि अगर आनंद शब्दादिक विषयों में से आता या आनन्द

एक के अनुभव में आया हुआहै तात्पर्य यह कि यह बात हर आमोख़ास के जानने में प्रत्यक्ष आई हुई है कि स्वप्न का संसार अपने आप में ही तरंगों की भांति होजाता है जैसे जल में तरंग कहीं बाहर से नहीं आती हैं वह जल ही तरंग रूप हो भासता है तैसे स्वप्न जगत कहीं बाहर से नहीं आता है अपना आपा [आत्मा] ही जगत रूप हो भासता है–समुद्र और तरंग में जो संबन्ध है वही ब्रह्म और स्थावर जंगम रूप सृष्टि में है दूसरी तरह यों भी कहा जासक्ता है कि सभी जीव ब्रह्म रूपी समुद्र की तरंग हैं—तरंग अपने को परिच्छिन्न जानती है, पैदा और नष्ट होने वाली जानती है. और दूसरी तरंगों से भेद मानती है, आपको सजातीय भेदवान ख्याल करती है और बुदबुदों से आपको विजातीय और फैन से आपको विलक्षण जानती है ग़रज़ अपने को देश, काल. और वस्तु परिच्छेद सहित देखती है और ग़ौर से देखा जावे तो तरंग जल ही है तरंगपन देखने मात्र है जैसे नाम रूप सहित जल का नाम तरंग होगया है तैसे ही नाम रूप सहित ब्रह्म का नाम जीव होगया है—

हे बावली तरंग ! तू तो जल है जल, छोड़ तरंगाभिमान को इस तरंगाभिमान के त्यागतेही तेरा जन्ममरणका अभिमान भी नष्ट होजायगा और जब तक तू तरंग रूप में रहेगी तब तक यानी तरंग पन की जिन्दगी में ऊपर कहे हुए कल्पित दुखों से दुखी न होवेगी—अगर तू इसी वक्त आपको मेरे कथनानुसार जल रूप न भी मानेगी तो आख़िर में तो

तेरे टूट जाने पर तो तुझे जल रूप हो ही जाना है तू ऐसा
ख्याल भी न करना कि तू टूट कर जल हो जायगी उस के बाद
फिर तू जल में से पैदा होगी, वह तू हरगिज़ न होगी वह
दूसरी होगी, हे तरंग यदि तू मेरे कहने को न मान कर
आप को जल रूप न मानेगी–आपको पैदा और नाशवान
ही मानती रहेगी तो भी–इस तेरे शरीर के टूट जाने पर
तो तू अवश्य जल रूप ही हो जायगी परन्तु अपनी ज़िन्दगी
में कल्पित दुखों से तपती रहेगी—

हे तरंग रूपी जीव ! शरीर गिरने पर तो तू ब्रह्म रूप
है ही यानी विदेह मुक्त है ही-तू आपको इस वक्त ब्रह्मरूप मान
या न मान, तेरे विदेह मुक्त होने में तो शको शुबा है ही नहीं
मगर हां शरीर के रहते हुए भी आपको ब्रह्म रूप मानले तो
जीतेजी का आनंद यानी जीवन्मुक्ति का सुख भी भोगले
विदेह मुक्त सब ही हैं पशुपक्षी तक-जीवन् मुक्त कोई २ है

ॐ ॐ ॐ

अंतःकरण की शुद्धि

वेद भगवान् मेघकी सी गर्जना के साथ कहता है कि
तू ब्रह्म है यदि तू नहीं मानता तो यही अंतःकरण
की अशुद्धता है और जो तू मानले तो तेरा अंतःकरण
शुद्ध है–अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद ही अंतःकरण की
अशुद्धता कहाती है, प्यारे ! अब तक तुझको अपने से पृथक्
कहीं भी ईश्वर नज़र नहीं आया फिर क्यों वृथा कल्पना

करता है–और तू एक ही अंतःकरण को अपना क्यों मा
बैठा है ? सब तेरे ही तो अंतःकरण हैं– हे आत्मे भगवा
तू क्यों धोखा खा रहा है ? जो २ चीजें(स्थावर जंगम
तुझे नज़र आती हैं उनको ज़रा ध्यान से देख–तेरी ही मूर्
हैं–तू चौखटे [Frame] की ओर यानी नाम रूप
ओर न देख–उसके अन्दर देख– हर चौखटे में तेरा ही फो
है–सब से उत्तम उपाय अंतःकरण के शुद्ध करनेका यही
कि आपको एक ही शरीर में कैद करके मत रख–तू आ
को शरीर मत समझ–यह मसल मत करे कि 'गुड़ खा
और गुलगुलोंसे परहेज़' हड्डी चमड़े से तुझको इतनी नफ़र
है कि उनको छूना भी नहीं चाहता और फिर ऐसा ढि
जाता है कि हड्डी चमड़ा थूक विष्टा मूत्र खुद बनने में बु
नहीं जानता, कहता और मानता है कि मैं शरीर हूं ज
तक तू शरीर में अहंभाव रक्खेगा तब तक सुख कदा
नहीं मिलेगा–जन्म मरण की भ्रांति दूर न होगी-राग
रूपी अग्नि में तपता ही रहेगा-भाष्यकार स्वामी कहतेहैं कि

शवाकारं यावद्भजति मनुजस्तावदशुचिः
परेभ्य स्यात्क्लेशो जनन मरण व्याधिनिलयः
यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकारमचलं
तदा तेभ्यो मुक्तो भवतिहि तदाह श्रुतिरपि ॥ ॐ

कौतुक

इस कौतुक का हाल किससे कहूं ? यह तो मुजरि

आश्चर्य है मुजस्सिम—और प्यारे यह तेरा कहना सुनना लिखना पढ़ना सभी आश्चर्य है और यदि बेतकल्लुफ़ाना (सच२) पूछते हो तो आश्चर्य की प्रतीति होना भी आश्चर्य है और देख सुन, कान में, चुपके से—ज़रा एक क़दम पीछे हट कर तो देख—इस अहंकार के आसन पर से अलग हो—यह आसन े वास्ते नहीं है और हां—आप तो बग़ैर आसन के ही ाराजमान रहा करते हैं आप तो सर्वाधार हैं—ओहो ! सब अंदर-नाम रूप ताने बाने के बने हुए कपड़े का (और पड़ा भी कैसा ? छींट-पचरँगा नहीं २ अंनतरूपा—विश्वरूपा) ापने घूंघट काढ़ा है-मगर मैंने देख ही लिये—चाहे जैसे रूप स्वांग) धारण कीजिये मुझसे नहीं छुप सकते हो-यहां ड़ों के ऊपर नज़र डालने वाले नहीं हैं नाम और रूप आप ेवर पर दृष्टि ही नहीं डालते-यहां तो आपके ख़ास जिस्म निज रूप) के आशक़ हैं—शुद्ध रूपके—हां हां उसी रुपके जहां आप अहंकार रुपी दर्बारी ग़ालीचे से उठकर—Theatre stage से उतर कर और साथ ही अपना अलौकिक (छींटका) नक़ाब दूर करके अपने ही ख़ास आसन पर अपनी सुख शय्या पर अपनी ही महिमां में (मंगमंग) होते हैं—क्या कहूं ? कैसे कहूं ? ज़ुबान काम नहीं देती - मनीराम जी फ़िसल पड़े. न मालूम किधर गये—पता नहीं. जानों थे नहीं- आश्चर्य २ परम आश्चर्य-नाम रूप का नाटक बन्द- ख्वाबके मानिंद. नहीं ख़्वाब ही—बस... ...बस जगत् (जागतेही) ही जगत् गायब-ग़ायब क्या ? विपर्ययभाव का नाश-Theatre

खतम-फिर यह कहना सुनना क्यों ? जनाब यह Theatre के बाद की नकल है जिसको कहते हैं....भला क्या ? Farce.

ॐ

अज्ञानी-ज्ञानी-विज्ञानी

बाह्य प्रतीयमान चराचर जगत, शरीर, प्राण, मन और बुद्धि से विलक्षण और इस संघात को सत्ता स्फूर्ति देने वाला, संघात से पृथक, संघात के प्रतीति काल में साक्षी संज्ञा वाला, असंग, अनाम, एकरस, निर्विकार स्वरूप मैं (मैं का लक्ष्य) हूं जागृत स्वप्न सुषुप्ति रूप नाटकों का स्टेज-रंग भूमि, मैं हूं, ऐसे निश्चय को ज्ञान कहते हैं और जब इस ज्ञान का बारंबार मनन होकर, यह ज्ञान अंतःकरण वगैरः को अपने रंग में रंग दे , जैसे नवीन विद्यार्थी को संस्कृत बोलने में प्रयत्न करना पड़ता है और वही विद्यार्थी कुछ काल में अभ्यास के बल से बिना सोचे हुवे मातृ भाषावत् संस्कृत बोलता है तैसे—या जैसे साधारण मनुष्य को अपने नाम और मनुष्यत्व में पूर्ण स्थिति होती है तैसे जब ज्ञान ऐसा पक्का होजावे कि वह ज्ञान बिना खास तौर पर सोचने के भी निवृत्त न हो , बहुत कहने से क्या , स्वप्न में भी विपरीत भावना न होवे , उस ज्ञान को विज्ञान कहते हैं— ज्ञानी के दिल में ज्ञान की दृढ़ता और सत्यता युक्ति व प्रमाणों व विश्वास (अनुभव शून्य) पर ही निर्भर है और विज्ञानी युक्ति प्रमाण आदि की परवाः न करता हुआ सा-

तरंग क्या है ? जल है, बुलबुला क्या है ? जल है, चक्र
क्या है ? जल ही तो है, फेन क्या है ? जल ही तो है, तैसे
ही हे देवों के देव-महादेव ! यह सृष्टि तेरा ही स्वरूप है, तुझ
से भिन्न नहीं है, जल में तरंग, मौज उठती है तब सुहावनी
दीखती है और भंवर पड़ता है तब भयानक मालूम होता
है, तरंग को देख कर राग पैदा होता है और भँवर को देख
द्वेष पैदा होता है, लेकिन किस को ? जो जल से भिन्न है
उस को, जल अपनी शीतल लहराती हुई तरंगों से प्रसन्न
नहीं होता और न अपने बीच में भयानक भंवरों से दुखी
होता है, तरंग भंवर दोनों को अपनी ही विभूति (विलास)
जान अपने स्वरूप में घूर्म—मस्त, राग द्वेष से रहित स्थित
-हता है यदि उस में बहुत सी तरंग और बुलबुले, भंवर
पैदा हों तो और न पैदा हों तो—दोनों ही अवस्थाओं में
वह अपनी हानि तथा लाभ नहीं समझता, तैसे ही हे महा-
सागर रूपी आत्म भगवान ! जो कुछ है वह तू ही है, तू
ही (जल तरंग वत्) सिंह है और तू ही गौ है तू ही पुरुष
है और तू ही स्त्री है तू हिंसक है और तू ही अहिंसा धर्म
का पालक है बंध, मोक्ष, कर्म, उपासन, सब तेरा ही स्वरू
है जैसे खांड का शेर और गौ। यद्यपि नाम रूप की अपेक्षा
से परस्पर शत्रु भासते हैं तथापि वास्तव में दोनों खांड हैं
खांड खांड से भय भीत नहीं होती तैसे नाम रूप के पर्दे
के अंदर जो तेरा स्वरूप है उस को विचार, जैसे खांड सिंह
और बकरी दोनों ही का आत्मा है तैसे क्या पुण्यात्मा और

ॐ

अहंकारविमूढात्मा-कर्त्ताहमितिमन्यते

बहुधा मनुष्य मन के वश करने को— सतोगुणी बनने को नाना प्रकार के उपाइ करते हैं-कोई प्राणायाम-कोई नेती धोती वस्ती आदि क्रिया का अभ्यास कोई कुछ कोई कुछ करतेहैं लेकिन फिरभी ज्यों के त्यों ही रहते हैं- सच्चिदानन्द कहताहै कि 'तरति शोक मात्मवित्' हे भोले भाले महेश! तुझको क्या होगया है? तू किस गड़बड़ में पड़ा है? प्यारे अगर तू शांति चाहता है तो तू सिर्फ़ यही कर कि दुष्ट अहंकार का संग छोड़दे-तेरी क़सम तेरे को कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है तू मुफ्त में आपको कर्ता मान कर झगड़े में पड़ गया है क्या तेरा एक ही मन है जिसके पीछे तू हाथ धोकर पड़ रहाहै? प्यारे सर्वशरीर-सर्व अंतःकरण सर्व इन्द्रियां तेरी ही हैं—ज़रा आंख खोल कर देख एक ही शरीर मन बुद्धि में क्यों घर कर बैठा है? जैसे स्वप्न का ब्रह्मांड तेरा ही रुप है तैसे ही यहां भी है—हे प्राणों के प्राण! तू इस तुच्छ परिच्छिन्न रुप एक बुद्धि—मन शरीरादि पर अपना ममत्व करके यह कंगालपनका स्वांग क्यों बनाना चाहता है? क्या तू यह चाहता है कि एक शरीर में स्थित मन को सतोगुणी बना कर संसार में नाम करूं? हे चक्रवर्ती महाराजाधिराज! क्या तुझको इस एक शरीर के टापू में ही

क्यों ? आज क्या है ? जूतों का हार गले में क्यों पह
ना है ? पांच जूतों का हार (पांच इन्द्रियों का)—यदि तुझे
यह हार अच्छा नहीं लगता तो प्यारे तोड़दे तोड़दे.......
तोड़दे सुमेरु को (अहंकार को) और यदि तुझे दुख नहीं
भासता तो मौज कर आज होली है (नहीं नहीं सदैव ही
होली है) यह जूतों का हार तेरी अर्द्धांगी ने तुझ से मखौल
करने को तुझे पहनाया है तू भी हंस , लगा कहकहे, आज
होली को जूतों के हार से इज्जत नहीं विगड़ती—आवरू में
फ़र्क़ नहीं आता, मौज कर, होली का छैला कहला और याद
रख और हां हां गा........गा' मस्त महीना फागुन का रे
कोई जीवे सो खेले होली फाग, भला०' होली का छैला है
होली........है........ ॥ अगर तू इस हार को सत्य जान क
अपनी इज्जत-अपनी शानमें फ़र्क़ आया हुआ समझेगा कि
हाय में दुखी हूं सुखी हूं वगैरः २ में सुनने देखने खाने पीने
वाला हूं अपने वास्तव स्वरूप में फ़र्क़ देखेगा तो लोग (त्रि
दान) तुझे मुर्ख कहगें और तेरे लिये ताली वजेगी, कैसे
होली का भडुआ है' यों ॥ • ॐ •

मस्त महीना=दुर्लभ श्रेष्ठ, फागुन=नरतनु, जीवे=स्वरूप में जागे,
खेले होली फाग=जीवन मुक्त हो विचरे

आकाश वाणी

ओ शहंशाह , ओ सच्चिदानन्द (अस्ति भाति
प्रिय) खड़ा रह वहीं जहां तू है, अपने तख़्त
पर ही बैठा रह, इधर उधर की दौड़ा दौड़

इस लिये सब जगत् क्रियावान है, जो जाहिर में क्रिया
वान नहीं नज़र आता मसलन काष्ट पत्थर आदि उस के
परमाणुओं में भी क्रिया हर समय अवश्य हो रही है और
यही कारणहै कि हरएक वस्तु स्थूल रूप में हो चाहे गुणोंके
पंचभूतों के सूक्ष्म अंशसे बनी हो पुरानी होजाया करती है
नाश होजाया करती है तात्पर्य यह कि विकारको प्राप्त हो
जातीहै, इसको पाश्चात्य विद्वान Western Philosopher
भी मानते चले हैं—परंतु आत्मा, अपना आपा ही एक
एसी चीज है कि यह गुणों का ज्ञाता, गुणों को सत्ता स्फूर्ति
देने वाला, गुणों का बना हुआ नहीं है इसी लिये इस में
तबदीली नहीं होती, यह पुराना नहीं होता है, हर एक
शख्स कहता हुआ नज़र आता है कि जो मैं बाल्यावस्था
में था वही अब वृद्धावस्था में हूं, इतना ही नहीं कर्मठ-
आवागमन वादी भी इस बात को क़बूल कर रहे हैं कि जो
मैं पूर्व जन्म में था वही अब, वर्तमान जन्म में हूं, शरीर
इन्द्रिय, मन बुद्धि वगैरः जो गुण रचित हैं उन में भले ही
फेर फार हों, आत्मा, आपका आपा, ज्यों का त्यों निर्वि-
कार रूप में स्थित है प्यारे आत्मन्! तू निर्विकार है क्यों
आप को इन गुणों के साथ में विकार वान मान कर दुखी
होता है, निर्विकार को क्या खौफ़? मनुष्य आप को गुणों
सहित मान कर गुणों की तबदीली को आपे में आरोपण
करके मुफ्त का रंज उठाते हैं, जो चीजें आपे से भिन्न हैं
उन को भी आपा मान कर यानी गुणों को भी आपा मान

कर, मैं शरीर हूं, बुद्धि व अहंकार हूं इस तरह मान कर दुखी होते हैं॥ दुनियां में दर असल दोही चीजें हैं जड और चेतन, मैं और यह, पुरुष और प्रकृति द्रष्टा और दृश्य (दृष्टि तो द्रष्टा और दृश्य के संबंध को कहते हैं) अब ' मैं और यह ' इन दो में छांट लेना चाहिये कि मैं (आपा) क्या हूं और यह (गैर) की फिहरिस्त क्या है भाष्यकार स्वामी तो कहते हैं कि' अह मिद मितिच मतिभ्यां सततं व्यवहरति सर्व लोको ऽ पि—प्रथमा प्रतीति चरमा निवसति वपुरिंद्रियादि बाह्यार्थे' प्यरे जिन को तू गैर (यह) की फिहरिस्त में ले चुका उनके साथ मिल कर क्यों दुखी होता है, उन के साथ मिला रहेगा तो याद रख कभी भी सुख का अनुभव न कर सकेगा श्री शंकर स्वामी उन चीजों को जो तेरी' यह' की फिहरिस्त में है बाह्यार्थ बताते हैं (बाह्यार्थ—बाहियात) कौन सी चीजें? शरीर, इन्द्रिय आदि (अंतः करण)—कैसी भारी गलती, कैसी मूर्खता, है कुछ ठिकाना इस मूर्खता का, शठता का? हे शुद्ध बुद्धि, प्रक्रिया ग्रंथों के गोरख धंधे में न पड़, शक्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ में विभाग न कर, तेरा' मैं, ही (सब का सब' मैं,) ब्रह्म है निस्संदेह चिल्ला जरा .. . . भी मुझे के . देख, यह क्या आवाज आई ध्यान से सुन' अहमालम्बन मिदं कस्य परोक्षं भवेदिदं ब्रह्म, तदपि विचार विहीनैरपरोक्षमेनं न शक्यते मुग्धैः, तात्पर्य सब का यह है कि तू [तेरा मैं ही] ब्रह्म— निर्विकार है और तेरा अहंकार—अंतःकरण, इन्द्रिय , शरीर

आदि का बीज तेरी ' यह , की फिहरिस्त में है , यह सब
विकारी हैं और तू निर्विकार है जैसा कि अब तक तू अपने
अनुभव से भी जान रहा है, हे चेतन देव तू जानता तो सब
कुछ है परंतु तेरे राज्य में पोल बड़ी भारी है, सो क्या डर
है राज्यों में हुआ ही करती है—

ॐ

तुम अपने को मुक्त मानो

गंगे तव दर्शनान्मुक्तिः

प्यारे गंगा भक्तो ! यदि तुमारा विश्वास है कि गंगा
स्नान से मुक्ति हो जाती है तो तुमको गंगा
स्नान किये बाद आपको बद्ध मानने का हक बिल्कुल नहीं
है सच्चिदानन्द का मतलब यह हर्गिज नहीं है कि खाली
मुख से हाँ हाँ हाँ करके कहदो ऊपर २ से कि, हाँजी मुक्त
ही हैं, प्यारे ! वेद को मानो, वेद गंगा के दर्शन से मुक्ति
की प्राप्ति कहता है· भारी से भारी पापी गंगा न्हा कर मुक्त
होता है गंगा न्हाते ही आपको मुक्त मानो· न्हाने के बाद
यदि तुम अपना आवागमन मानोगे तो भले ही जन्म मर·
ण के फिक्र में सूखते रहो लेकिन तुमारा जन्म हर्गिज होगा
नहीं, कारण कि गंगा न्हा चुके हो· तुम यदि अविश्वासी ब·
नोगे तो क्या श्री गंगा महारानी· पतित पावनी अपने स्व·
भाव को त्याग देगी ! हर्गिज नहीं—

सच्चिदानन्द का तो मानना है कि तुम सब
हालत हर हालत में मुक्त हो नित्य शुद्ध ब्रह्म स्वरूप हो·

की तरफ़ गये—अंदर गये—खुशी २ में कुर्सी पर बैठकर आनंद से देखने लगे—मगर नाटक के हरिश्चंद्र के पुत्र का नाटक ही में मृत्यु देखकर और उसकी नाटकी माता को ज़ार २ रोते हुवे देखकर आपभी सुबकने लगे—प्यारे तू क्यों रोता है? क्या तू नहीं जानता कि तू नाटक देख रहा है जिस समय तुझे रोना आया उस वक्त बिला शकोशुवा तुझे यह ध्यान नहीं रहा कि यह नाटक है-मिथ्या है और मैं द्रष्टा हूं मेरा इससे ताल्लुक़ कुछ भी नहीं है—प्यारे इस दुनिया में जब २ तुझ को रंज होता है जुरूर तू उस वक्त आपको इसका द्रष्टा नहीं समझता है इसको सत्य मान लेता है—जैसे नाटक देखने वाला अपनी और नाटक की तह पर ध्यान दिये बिना ही झूठे हरिश्चंद्र की स्त्री के साथ २ खुद रोनें लगता है उस के तदाकार हो जाता है तैसे आप मन बुद्धि इन्द्रिय शरीर आदि के साथ तदाकार होजोत हो-क्यों प्यारे तू तो घर से नाटक देखने आया था उल्टा रोने लगा? यह तेरी भूल का ही फल है—यह जगत् आपकी ही माया ने आपकी ही फुरना ने नाटक रूप में आप के पेश किया है—खुद आपकी माया ही नाटक रूप बनी है आप क्यों भूल जाते हो और मुफ्त का रंज उठाते हो? जैसे कागज़ पर हिरन और शेर के चित्र होते हैं तैसे चित्रकी तरह नाम रूप विचित्र जगत् है आप तो कागज़ की तरह हो इन चित्रों से आपका नफ़ा नुक़सान नहीं है—हे चेतन देव ! हे भोले महादेव—भूल मत जाओ यह तो नाटक है नाटक—झूटा—वैसेही—इसको देखकर हां शोक मत करो हँसो-क़हक़हे लगाओ—

ॐ ॐ ॐ

कि पहले अपना इलाज कर—अपनी कमी को दूर कर, ऐसा होने पर तुझ को ग्रासकट भी आपसा ही ब्रह्मवेत्ता दीखेगा जब तक तू ईंट पत्थर आदि में भी आप को (ब्रह्म रूपकर के) इस तरह न अनुभवेगा जैसा कि अंतःकरण संहित शरीर में अनुभव करता है तब तक बैठ मत, जब तू आप को सर्वत्र एकसा देखैगा तब ही देखैगा यथार्थ तो ॥ हे मेरे अधिष्ठान रूप सच्चिदानन्द ! हे मेरे वास्तव रूप सच्चिदानन्द हे मुझ तरंग के आधार सच्चिदानन्द रूप समुद्र ! जैसे मैंने जगत को स्वप्नवत् जाना है तैसे अपनी सर्व क्रियाओं को भी और खुद आप को भी जानता और मानता हूं, मैं (तरंग रूप मैं) झूंटा और मेरी क्रिया भी झूंटी, मैं वास्तव में तरंग नहीं हूं, मैं तो जल हूं जल, आप से अभिन्न, आप का ही अपना आप, मतलब यह है कि' जगत् स्वप्न है या आत्म स्वरूप है ' यह ख्याल भी वास्तव में मैं नहीं पाता हूं और अहंब्रह्मास्मि यह भावना भी मुझ तरंग रूप झूंटे मन की झूंटी भावना है—मैं तो........क्या कहूं....व....स' अहं ब्रह्म, अहं जीव, जगन्मिथ्या , नित्योहं आदि ' भी अन हुई ही भावना है, मैं—मेरा वास्तव स्वरूप, आप से अभिन्न है और हे सर्वाधिष्ठान ! जो कुछ मैं हूं सो क्या कहूं ? मैं तो— मुझ में अहंब्रह्मास्मि का भी फुरना नहीं है जगत् वगत का तो कहना ही क्याहै, और लो अबदेखिये मेरे वास्तव स्वरूपको— सच है:— न निरोधो न चोत्पत्ति न बद्धो न च साधकः
न मुमुक्षु र्नवैमुक्तः इत्येषः परमार्थतः

ॐ ॐ ॐ

रहे, वाहर न जावे उस गाँव में, और सब लोग शरीफ़ थे गांव के चारों तर्फ़ पहरा रहता था कि कोई बाहर से न घुस आवे- एक दिन एक आदमी के यहां चोरी होगई- तह़कीकात से माळुम हुआ कि वह चोर उस रात्री को घर से गै़र हाज़िर था अब कहो किसने चोरी की ? जुरूर उसी चोर ने की- और चोर नहीं आया- वर्नः उस चोर को साबित करना चाहिये कि मै फ़लां जगह था- इस सबूत के बग़ैर दिये वह चाहै जैसी क़समें खाय उसका यक़ीन नहीं हो सका कारण कि गांव भर में वही चोर, घर से ग़ैर हाज़िर और बाहर से कोई आया नहीं ॥

प्यारे तुम जानते हो कि 'मैं कुछ हूं' अपने होने का अहंकार तुम में हाज़िर है अब ज़रा सोच कर कहो कि जिस सैकिन्ड में तुम मेरी तरफ़ देखते हो उस सैकिन्ड में तुमारी वृत्ति अहमाकार होती है या मेरे शरीराकार- ज़रूर तुमारी वृत्ति केवल मेरे शरीराकार होती है, देखते समय रूपाकार, स्वाद लेते समय रसाकार, श्रवण करते हुए शब्दाकार इत्यादि—तात्पर्य यह कि उस क्षण में तुमारी वृत्ति अहमाकार नहीं होती, कारण कि उस समय अहम् है ही नहीं तुमारी अहम् घरसे ग़ैर हाज़िर है उसीने शब्दादि आकार धारण कर लिये हैं, वही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध परिणाम को इस तरह प्राप्त हुआ है जैसे बीचे में (साँचे में) खांड गला कर हाथी घोड़े का आकार होजावे और फिर जिस सैकिन्ड में तुमारी वृत्ति अहमाकार होती है उस समय विषयाकार नहीं हो सकती, ध्यान करो बहुत सूक्ष्म काल है, ग़र्ज़ ही काल

रहे, बाहर न जावे उस गाँव में और सब लोग शरीफ़ थे गांव के चारों तर्फ़ पहरा रहता था कि कोई बाहर से न घुस आवे- एक दिन एक आदमी के यहां चोरी होगई: तहकीकात से मालुम हुआ कि वह चोर उस रात्री को घर से ग़ैर हाज़िर था अब कहो किसने चोरी की ? ज़रूर उसी चोर ने की- और चोर नहीं आया- वर्नः उस चोर को साबित करना चाहिये कि मै फ़लां जगह था- इस सबूत के बग़ैर दिये वह चाहै जैसी क़समें खाय उसका यक़ीन नहीं हो सका कारण कि गांव भर में वही चोर, घर से ग़ैर हाज़िर और बाहर से कोई आया नहीं ॥

प्यारे तुम जानते हो कि 'मैं कुछ हूं' अपने होने का अहंकार तुम में हाज़िर है अब ज़रा सोच कर कहो कि जिस सैकिन्ड में तुम मेरी तरफ़ देखते हो उस सैकिन्ड में तुमारी वृत्ति अहमाकार होती है या मेरे शरीराकार- ज़रूर तुमारी वृत्ति केवल मेरे शरीराकार होती है, देखते समय रूपाकार, स्वाद लेते समय रसाकार, श्रवण करते हुए शब्दाकार इत्यादि—तात्पर्य यह कि उस क्षण में तुमारी वृत्ति अहमाकार नहीं होती, कारण कि उस समय अहम् है ही नहीं तुमारी अहम् घरसे ग़ैर हाज़िर है उसीने शब्दादि आकार धारण कर लिये हैं, वही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध परिणाम को इस तरह प्राप्त हुआहै जैसे बीचे में (साँचे में) खांड गला कर हाथी घोड़े का आकर होजावे और फिर जिस सैकिन्ड में तुमारी वृत्ति अहमाकार होती है उस समय विषयाकार न
हीं हो सक्ती, ध्यान करो बहुत सूक्ष्म काल है, एक ही का

करती थी (कर्मोपासन का उपदेश, प्रवृत्ति मार्ग) कि नहीं
मानता तो जा, परसों जब तू चला गया तब बाबा ने मुझे
बाहर जाने को मना किया और मा भी सामने खड़ी देखती
थी फिर बाबा (स० गु०) ने मुझे गोदी (शरण) में बिठा
कर माखन मिश्री खिलाया, देख अब तक उसी की डकार आ
रही है, तब मैंने भी सोचा कि ग्वालिनों के सामने खुशामद
करने पर खट्टी छाछ मिलती है और वे मेरी "(ब्रह्माकार
वृत्ति) बांसुरी चुरा लेती हैं और मांगने पर नहीं देतीं खट्टी
छाछ के लालच में नचाती हैं और मैं बाबा नन्द जी का नाम
लेता हूं [अंतरात्मा रूप स० गु० का ध्यान करता हूं] और
मेरी मा उन से तकरार करती है तब मेरी बांसुरी मिलती
है सो यार मंसुखा अब हम तो जाते नहीं (यशोदा) अरे
कृष्ण आज फिर यह मंसुखा आया है, खबरदार जो तू
बाहर गया, यह तो भिखारी घर घर का फिरने वाला है
इस के साथ मत जाना मैं माखन तैयार करती हूं-(मंसुखा)
यार यह कौन है जो यशोदा माता का पल्ला पकड़े खड़ा है (कृ०)
हंसकर, प्यारे अब यारों का तो ब्याह होगा, और इसी के साथ
होगा-पहले मैं इसे मा के पास बैठा देखा करता था, और मेरा
भी मन इस की ओर आता था लेकिन तेरे साथ बाहर मुहल्लों में
ग्वालिनों के यहां जाते जाते इस का ख्याल नहीं रहता था
अब तो नन्द बाबा ने मेरी सगाई इस के साथ करदी है-
यार एक और भी कारण है जिससे मैं तेरे साथ नहीं जाता,
मा ने कहा है कि जो तू ग्वालिनों के मुहल्ले में छाछ के लिये

की सेवाको चारों तरफ़ छोटे २ मातहत तैयार होते हैं तैसे-यदि बादशाह की स्पेशल ट्रेन होती है तो उस में मामूली काम करने वाले नहीं रहते अपने महकमे (खाते) के आफ़ीसर गार्ड ड्राइवर का काम देते हुवे आप को धन्य मानते हैं तैसे मुझ नूरों के नूर प्रकाशों के प्रकाश आत्मा की सेवा करने के वास्ते रुद्र, चन्द्रमा. ब्रह्मा, वागनजी, अग्नि, इन्द्र, प्रजापति यम, दिग्पाल- वायु, सूर्य, वरुण, आश्विनीकुमार आदि अपने इलाके बांधकर और उनमें अपने २ रहनेके वास्ते तम्बू तम्बोरी लगाकर स्थित हैं मैं अपने राज्य सिंहासन पर (अपनी महिमा में) रहता हूं तब यह पूर्ण रूप से सेवा करते हैं और मुझ से भयभीत हुवे अपना २ काम करते हैं और जबकभी मैं इन से मित्रता करता हूं और मित्रता के वश इन के डेरों में (अपने सिंहासन को छोड़ कर) जाकर बैठ जाता हूं तो यह मेरे साथ ऐसे बेतकल्लुफ़ होजाते हैं कि अपनी सेवाकी डयूटी ठीक ठीक नहीं बजाते- इतनाही नहीं बल्कि अपनी सेवा मुझ से (अपने मालिक से) कराने की इच्छा करते हैं (सच कहा है कि नौकर और सेवकके साथ में बेतकल्लुफ़ी का वर्ताव स्वामी को अवश्य हानिकारक होता है) अब मुझ को स्पष्ट ज्ञात हुआहै कि इनसे मित्रता करना जानों नौकरों का नौकर बनना है- और इनके डेरे मेरे सिंहासन की बराबर सुखदायी भी नहीं हैं इनके डेरे छोटे २ हैं स्थिर रूपभी नहीं खानःबदोशों के से हैं-हमेशः बदलते रहतेहैं सच पूछो तो इनके मकान हमेशःही मरम्मत तलब रहते हैं Repairable

सर्वंह्येतद्ब्रह्म

दन्निनि, दारु विकारे दारु तिरो भवति सोऽपि तत्रैव जगति तथा परमात्मा, परमात्मन्यपि जगत्ति रोधते

(स्वा० श्री शकराचार्य जी)

श्रुति का प्रमाण मौजूद—स्मृति का प्रमाण विद्यमान—गवांर तक के मुख से भी बेतहाशा निकल रहा है कि 'परमात्मा सब जगह है' फिर मुझे क्या हक है यह कहने और मानने का कि यह सामने परमात्मा ही का दर्शन नहीं होरहा है! अब सच्चिदानन्द श्रुति-स्मृतिके प्रमाणकी और किसी प्रकार की भी बढ़िया से बढ़िया साक्षी (गवाही) की ज़रा... ज़रा परवा नहीं करता— अब तो अनुभव द्वारा सिवाय ब्रह्म चेतन के कुछ भासता ही नहीं—बाबा! हज़ारों बार स्वप्न में अनुभव करके और स्वप्न जागृत की एकता पूर्णतः सिद्ध हो जाने पर (अनुभव से) बलात्कार से यह निश्चय प्राप्त हुआ है-और अब तो........क्या निश्चय और क्या अनिश्चय! क्या ज्ञानी संत महानुभाव जीवन्मुक्त, और क्या पशु पक्षी कीड़े मकोड़े दुष्ट कर्मचारी—विषयी पामर, भक्त, कमाई, ईंट, पत्थर मुर्दा, ज़िंदा— पदार्थों का भाव—पदार्थों का अभाव ? क्या २ कहूं ! यह कलम— डायरी— स्याही— और इस ख्याल का इस समय लिखना—अबतो सर्व ही आत्म रूप दीखता है-जो लोग 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' को नहीं मानते—सच्चिदानन्द उनका क़ुसूर नहीं बताता. शिव २ भला महात्मा का क़ुसूर

हर्गिज़ २ नहीं, शून्यवादी और अनीश्वर वादी आदि नास्तिकों के शरीरों के अधिष्ठानकोही नहीं—बल्कि उनके शरीरों सहित यों निश्चय हुआ है कि आत्मब्रह्म ही है ब्रह्म के सिवाय कुछ है ही नहीं— अगर ' है ही नहीं ' भी कुछ है तो वह भी ब्रह्मात्मा है—बारंबार आप ही को आप का नमस्कार है सच्चिदानन्द क्रोधी कुसंगी को ब्रह्म ही जानता है बिला भी बाल भर की कमी के—जो कहते हैं कि 'जीवोऽहं' वह क्या है? मेरे खिलाड़ी आत्म चेतन का विलास है ज्ञान अज्ञान भी कुछ ब्रह्म से भिन्न नहीं—अबतो आप अपनी तरंगों का मज़ा देख २ कर खुश हूँ—मस्त हूँ आप्त काम हूँ पूर्ण काम हूँ ॥

अहाहा संसार क्या है! मेरे आनन्द की खुशबू, मुझ मस्त की उद्गार, सब श्रुति स्मृति आदि आत्म समुद्रकी लहरें हैं आत्म रूपी महारत्न की झिलमिलाट है, धन्य है आत्म भगवान् धन्यहै तुझको, तेरी लीला, तेरा माया, तेरी शक्ति, और तिसपर भी तेरी निर्लेपता निर्विकारता को। कहांतक कहूं इस जगसी शरीररूपी फूंकनी में से कितना कोई कहे? कहने सुननेका काम नहीं, अहंब्रह्मास्मि तत्वमसि, सर्वखल्वेतद्ब्रह्म आप ही कहता है सुनता है वगैरः वगैरः क्या मज़ा है आप ही आप को अनात्मवत् देखता है—है ठिकाना इस विलास का? अहंब्रह्म और सर्वखल्विदं ब्रह्म बोलने वाले और अहाहा विषय में क्या आनन्दहै ऐसा कहनेवाले दोनों सच्चिदानद के राज्य में एक घाट पानी पीते हैं: खांड का शेर और खांड की गौ सच्चिदानन्द रूपी एक ही खांड में रक्खे हुवे हैं सच्चिदानन्द परम आस्तिक है नहीं२ आस्तित्व मात्र ही है ॥

ॐ

भूले और मारेगये-क्षणकाप्रमाद मृत्युहै

हे चेतन देव तू इस विस्तृत जगत् को दीर्घ काल से चला आता मत समझ- ऐसा तू हर्गिज़ २ ख्याल मत कर वैठना कि मेरा पूर्व जन्म था; और वहां करे हुए मेरे सुकृत दुष्कृतों का फल रूप यह वर्त्तमान जन्म हुआ है, और इस वर्त्तमान जन्म में कर्म उपासनादि साधन संपन्न होकर ज्ञान प्राप्त करूंगा. और मोक्षका भागी बनूंगा और मुझसे पृथक अन्य प्राणी भी हैं जिन्में से कोई मुक्तहैं कोई बद्धहैं प्यारे इस प्रकारका विचार अंतकरणरूपी गुहा में बैठकर मत करनां, जैसे क्षणभरमें तुझको विस्तीर्ण जगत् स्वप्नमें दीखताहै और उसक्षणके ही अन्दर तू अपना जन्मादि मानलेता है तैसे ही यह वर्त्तमान कालका जगत् भी तेरा क्षणभर का ही प्रमाद है, प्यारे आत्मन् न तेरा पहले जन्म था, न वर्त्तमान में है और न होगा–यदि क्षणमात्र को भी अपने आसन से हटैगा–अपने स्वरूप में स्थित आपको न मानैगा–तो तुझको वही प्रमाद विस्तीर्ण जगत हो भासैगा· प्यारे आत्मन् तू आपको मन बुद्धि आदि के छोटे से कर्मांड में मत समझ- जैसे महान्समुद्र में छोटी बड़ी अनेक तरंग पैदा और नष्ट होती रहती है तैसे अनंत मन बुद्धि आदि तरंग तुझ महासागर में पैदा हो २ कर नाश होती रहती हैं और मन बुद्धि ही की कल्पना; नहीं २ मन बुद्धि ही संसार है

संसारकी सत्ता इनसे भिन्न किंचित मात्रभी नहीं है और यह भी खुद अपनी सत्ता से कायम नहीं है यह तेरी ही सत्ता से भासती हैं बल्कि इस तरह जान कि तूही मन बुद्धि आदि होकर भास रहा है, जैसे गंगा किनारे रेत ही जल होकर भासता है वैसे तूही जगत होकर भास रहा है, जैसे रेत सदैव रेत ही है तो भी दूर से जल सा नज़र आता है तैसे तू सदैव ज्यों का त्यों एक रस निर्विकार चेतन आत्मा है परंतु दूर से अर्थात् मन बुद्धिमें से जगत होकरभासता है देख, सुनभाष्यकार स्वामी कहते हैं —

मय्यखंड सुखाम्भोधो बहुधा विश्व वीचयः ।
उत्पद्यते विलीयंते माया मारुत विभ्रमात् ॥

ॐ ॐ ॐ

वृतियों को देखो-स्थिर मत करो

आप स्थिर होजायगीं

यदि तू मन की वृत्तियों से डर कर इनको स्थिर करने का उपाय करेगा तो मन-अहंकार जियादः पुष्ट होता जायगा क्योंकि वास्तव में सब विश्व तेरी सत्ता से ही कायम है—इस वास्ते तू मन और मन की सत-रज-तम् गुण वाली वृत्तियों को मिथ्या जानकर उनकी तरफ़ से बेपरवाः होजा- ऐसा करने पर मन शांत होजायगा- क्या बृहस्पति के पुत्र कच का हाल नहीं सुना है कि जिसने बहुत वर्षों तक अहंकार को निवृत्त करने का उपाय किया

और अहंकार अधिक २ पुष्ट होता गया—तब बृहस्पति (देव गुरू) ने उसको कहा कि हे पुत्र! यह अहंकार तुझ आत्मा में मिथ्या फुरा है उसका क्या उपाय करता है उसको मिथ्या जान और मिथ्या के वास्ते परिश्रम मत कर—ऐसा उपदेश सुनकर कच जीवन मुक्त होकर विचारा है तैसे ही हे अहंकार के पीछे डंडा लेकर भागने वालो। डंडों को फैंकदो—क्यों मिथ्या श्रम करते हो? और याद रक्खो कि जिस समय तुम उसको मिथ्या जानोगे उसी समय वह नहीं रहेगा रज्जू का सर्प लाठी से नाश नहीं होता उसके मिथ्यात्व ज्ञान से ही उसकी तत्कालिक निवृत्ति होती है तैसे तुम भी वृत्तियों के स्थिर करने को मिहनत मत करो—सर्व वृत्तियों का प्रकाशक जो तुमारा आत्मा—अधिष्ठान रूप है उसी रूप रहे आओ वृत्तियों की परवाः मत करो— इसतरह वृत्तियां शांत होजायगी— छोड़ दो वृत्तियां की लगाम, कृष्ण परमात्मा का लेसन है" पर ध्यान करो=

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥

ॐ ॐ ॐ

चारहवर्ष दिल्ली में रहे और भाड़ झों[illegible]

[illegible] मन जब न पशु पक्षी का वेष लिये [illegible]
[illegible] रात्रि दिवस विषय भोग भोगना ही था [illegible]
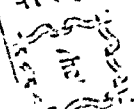
ो मनुष्य देह प्राप्तहुई है.क्या अब भी विषयों ही में सुःख ढूंढता
युगों बीतगये. कभी तूने विषयों में तृप्ती का अनुभव नहीं
किया उल्टी तृष्णा की वृद्धि अनुभव करता रहा है—और
ागल— सोच कि कुत्ते को भी एक बार देखने से बासन
ाली दीखता है तो फिर उसकी ओर नहीं जाता और तू
अनंतों बार देख चुका कि विषयों में तृप्ती नहीं इतना ही नहीं
बल्कि उल्टी अतृप्ती (तृष्णा) बढ़ती है फिर भी विषयों के
लिये सोता हुआ भी जाग उठता है क्या इसी के वास्ते यह
दुर्लभ मनुष्य देह है? ८४ लक्ष योनियों में यह देह ऐसे है
जैसे बहुत से छोटे २ गावों में बड़ा शहर-यह सुगमता से
नहीं मिलता है देवता भी इस की इच्छा करते हैं इस लिये
यह देव शरीर से भी उत्कृष्ट है ऐसे उत्तम देह को पाकर भी
यदि परमात्मा का दर्शन न किया तो वही बात हुई कि
'दिल्ली में रहकर भी भाड़ ही झोंका' यह शरीर भाड़ है पंच
इन्द्रिय सूराखहैं और शब्दादि पंच विषय रूपी इंधन. नहीं
कहा है—प्यारे तेरे मानने पर ही बंधन और मोक्ष का दार-
मदार है फिर तू क्यों नहीं मानता? तू पांच विषयों में
बहुत भटका है और सुख नहीं पाया अब मेरा कहना मान
और पीछे को लौट कर देख तुझे सच्चा सुख मिलेगा! अरे
भोले! तू शांति चाहता है सो विषयों में नहीं है विषयों में
तो शांति का अक्स (प्रतिबिंब) है जैसे शीत काल में
अग्नि की इच्छा करने वाला प्रज्वलित अग्नि का ठंडे जल
में प्रतिबिंब देखकर उसे सच्ची अग्नि जान उस में कूद पड़े

तो परिणाम क्या होगा ? अधिक शांतलता को प्राप्त होकर अधिक कष्ट पावेगा तैसे हे मोघू तू विषयों में सच्चे सुख का प्रतिबिंब मात्र देखकर उसे सच्चा जान अब तक भोग भोग कर दुखी होता रहा है अब सच्चे सुख की ओर आ और याद रख—मान—विश्वास कर कि उधर को मुंह फेरते ही तुझे मेरा कहना सच्चा भासेगा और फिर तू रोकने पर भी उधर जाए बिना न मानेगा और प्रतिबिंबित सुख की ओर भूल कर भी मुख न करेगा—यदि इतने पर भी मेरा कहा नहीं मानता तो चलदे मेरा तेरा संबंध ही क्या ? तू कामी-चंचल विकारी—जड़ और मैं निष्काम—कूटस्थ—निर्विकार—चेतन—न माने तो देखले पुराने लेख (सतशास्त्र) और अपना रास्ता पकड़ और मुझे तो अच्छी तरह याद (अनुभवसिद्ध] है कि मेरा तेरा संबंध ही नहीं जैसे तम और प्रकाश का संबंध नहीं—तुझे समझाया है—समझेगा तो तूही सुख पावेगा-न माने-गा तो बच्चा तू ही रोवेगा, सच्चिदानन्द का हानि लाभ नहीं।

ॐ ॐ ॐ

प्रणव (ॐ), ब्रह्म, जगत्
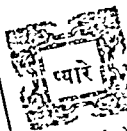
प्यारे पाठक गण ! निष्पक्षपात होकर. ध्यान देकर-सा वधानता ही से सुनो आज सच्चिदानन्द तुम्हें प्रणव (ॐ) और ब्रह्म और जगत्—इन तीनों का वास्त

स्वरूप बताता है—चारों आश्रमों में मुख्य—जिन्हों ने एषणा
ा—पुत्रेषणा, वित्तषणा और सब से भारी प्रतिबंधक रूप लोकै-
ा को शूकरी के विष्टा की तरह, दो टूक त्याग कर चतुर्थ
ाश्रम अर्थात् सन्यास का गृहण किया है उनका यह प्रणव,
ा धन है—यह प्रणव तोते मैंन की तरह उच्चारण करके ही
ापको कृतकृत्य मानलेने के वास्ते नहीं है—इस महामन्त्र,
दों और संसार सब के बीज रूप ओंकार का चिंतन ही
ल्याण का सुगम से सुगम मार्ग है और उसी रूप होकर अर्थात्
ोंकार रूप मेंही दृढ़ स्थितिका नाम विष्णुपद, निर्वाणपद,
ावन्मुक्त पद, ब्रह्मरूप अपने वास्तव स्वरूप में स्थित होना है

यह दृश्य जगत् संकल्प का रचा हुवा है—संकल्प—वासना
ा तुमारा ख्याल ही पककर साकार रूप में आपके सन्मुख
स्थित है—स्वप्न में जो तुमको जन्म, मरण, सुख, दुख, कर्म,
उपासन, ज्ञान रूप संसार, मुक्ति और बन्धन के दो बड़े भारी
इजलासों सहित नज़र आता है उसका उपादान कारण
संकल्प—वासना यानी तुमारे ख्यालात ही हैं—तुम ख्यालात
को ही साकार रूप में देख रहे हो—वास्तव में वह स्वप्नसृष्टि
एक ख्याल ही है और इसी वास्ते दरवाक़े निराकार ही है
क्योंकि ख्याल निराकार ही हुआ करता है ।

अब ख्याल क्या चीज़ है इसका विचार करो—ख्याल और
शब्द में किंचित् भी भेद नहीं है-शब्द दो प्रकारके होते हैं ध्वन्या-
त्मक (अर्थ रहित) और वर्णात्मक (अर्थ सहित)—वर्णात्मक
शब्द और ख्याल में आपको गौरसे विचार करने पर ज़रा

भी फ़र्क न मालूम होगा—तात्पर्य यह है कि ख्याल को हां वर्णात्मक शब्द कहते हैं–जो नहीं पढ़े हैं वे भी अगर कुछ ख्याल करते हैं तो वर्णात्मक शब्द के ही रूप में करते हैं वे ख्यालात चाहे प्रत्यक्ष वर्णों में लिखे हों चाहे मान सिक वर्णों में हों–गरज़ यह है कि ख्याल मात्र को वर्णात्मक शब्द मानना ही पड़ेगा– पहिले यह सिद्ध होचुका है कि निराकार वस्तु यानी ख्याल ही साकार वस्तु यानी जगत् होकर दीख रहा है–इस को न भूलना ।

अब वर्णात्मक शब्द यानी ख्याल का उपादान कारण तलाश करना चाहिये—प्यारे पाठक खूब गौर से एकाग्र मनसे विचारोगे तो साफ़तौर पर मालूम होगा कि वर्णात्मक शब्द (ख्याल) का उपादान कारण दरअसल ध्वन्यात्मक शब्द ध्वनि ही–शब्द मात्र ही है, अगर शब्द मात्र यानी ध्वनि ही नहो तो वर्ण किस का बनेगा ? ध्वनि ही, आवाज़ ही- शब्द ही साधारण शब्द ही वर्णात्मक शब्द का, ख्याल का नहीं नहीं सामने नज़र आती हुई कुल सृष्टि का उपादान कारण है—

ध्वन्यात्मक शब्द, इरादे से, इच्छा से–(पहिले सोच कर कि यह शब्द बोलना है, इस अर्थ वाला शब्द बोलना है) नहीं हुवा करता है, अगर पहले ख्याल करके बोला जायगा तो उस में वक्ता का तात्पर्य होने से वह ध्वनि रूप न कहला कर वर्ण रूप ख्याल किया जायगा: बच्चा जब पैदा होता है तब प्रथम ही–जब तक किसी ने सिखाया नहीं तब तक-

अ३...............ऐमा बोलता है, नहीं नहीं उस से बोला जाता है, और जो कोई भी बिना किसी बात के विचारे-साधारण शब्द निकालेगा तो 'अ' ही निकलेगा, शब्द गले से निकलता है, इस लिये हिंदू मुसलमान, पारसी, ईसाई, मूसाई चाहे जो, चाहे जिस देश का, चाहे जिस भाषा का जानने वाला क्यों न हो, उस के गले से 'अ' के सिवाय दूसरा शब्द निकल ही नहीं सकता-

इस ध्वन्यात्मक शब्द 'अ' ही का रूप ॐ हो जाता है, जब किसी के मुख से 'अ' निकलना शुरू होता है तब तालू में गुज़रते हुवे 'उ' की झलक और खतम होते वक्त 'म' की परछाईं सी स्पष्ट भासती है और वह 'अ' 'उ' तथा 'म' एक प्रकार के सामान्य शब्द में (अमात्र पद में) लय होजाते हैं जिस को (अमात्र को) लिखकर ज़ाहिर नहीं करसक्ते हैं यहाँ अ, उ, म तथा अमात्र वर्णात्मक शब्द बन कर ख्याल या जगत् के रूप में ज़ाहिर हैं —कृष्ण परमात्मा कहते हैं-
' अक्षराणामकारोस्मि '

अब इस का विचार कर्त्तव्य है कि 'अ' जो स्थान भेद से ॐ की सूरत में सुनाई देता है किस का शब्द है यानी इस का उच्चारण कर्त्ता कौन है और उसने किस अर्थ की सिद्धि के वास्ते यह 'अ' उच्चारण किया-

प्यारे खूब धीरज से सुनो और विचारो. यदि कहीं अंधेरे में कोई आदमी सोता हो बेखबर, मस्त, सुषुप्ति में, तो दूसरे पुरुष को नहीं मालूम हो सकेगा हां उसके श्वास से दूसरा आदमी मालूम कर लेगा कि यहां पर कोई

है जो श्वास ले रहा है। सुषुप्त पुरुष को इस प्रकार का अभि-
मान ज़रा भी नहीं है कि' मैं श्वास ले रहा हूं' वह तो मस्त
निर्द्वंद पड़ा है–आनन्द रूप ॥ श्वास या खर्राटे का शब्द बिना
प्रयत्न निकलता है, यह श्वास या खर्राटा उस की मस्ती का,
नहीं नहीं यहां कोई है इस प्रकार उस के अस्तित्व का सूचक
है, तैसे ही प्यारे बिल्कुल तैसे ही (अगर इन्द्रियों तथा मन
बुद्धि को संयम में लाकर देखोगे तो तुम मेरे सहमत होजा
ओगे) परमात्मा–सर्व का आत्मा, सर्वाधार, सर्वाधिष्ठान
जिस के वास्ते श्रुति भगवती कहती है' यतो वाचो निवर्त्तते
अप्राप्य मनसा सह' अपनी महिमा में आप ही स्थित है
(स्वमहिम्नि, श्रुतिः) और 'अ या ॐ' उस का मस्ती का-
खर्राटे का शब्द है, कहा भी है कि वेद–परमात्मा का श्वास
रूप है, वेद कहो या ज्ञान कहो और गहरा विचार करोगे तो
ज्ञान (वृत्ति ज्ञान) और ख्याल भी एक ही है–
'अ' या ॐ या वेद, परमात्मा का श्वास या शब्द है
और वेद को शब्द ब्रह्म कहा भी है–

सब लेख का तात्पर्य यह है कि वह परमात्मा जिस को
मन वाणि वगैरः नहीं विषय कर सक्ते हैं (क्यों कि निर्गुण,
असंग, अक्रिय, अद्वितीय होने से गुण, संबंध, क्रिया, जाति
के झगड़े से रहित है) उस का मस्ती का, आनन्द का, श्वास
खर्राटा ही ॐ है यह उस का (manifestation) चमत्कार
उस से अभिन्न रूप है, उस चमत्कार रूप, ध्वन्यात्मक शब्द
। ॐ में कुल अक्षर वर्णात्मक हवे हैं और ख्याल और ।

जगत के रूप में आप के संमुख है, शुद्ध ब्रह्म, ॐ, और जगत तीनों अभिन्न हैं सच्चिदानन्द ॐ व वेद और समस्त जगत को ईश्वर का श्वासरूप और ब्रह्मका ख़र्राटा मानता है। ॐ

एक अंहकार को छोडो मत

उसे सब में फैला दो

वेदान्त यह नहीं कहता है कि अहंकार (देहाभिमान) को त्याग दो वेदान्त तो यों कहता है कि एक ही देह में अभिमान करने का कंगलापन छोड़दो- यदि एक ही शरीर में अहं बुद्धि करके अलम् करदोगे तो बाकी के स्थावर जंगम देह फिर किसके करार दोगे? और जब स्वप्न सृष्टि को ख्याल में रखकर कुल शरीरों को ही अपना रूप जान लोगे- सर्व शरीरों में अहमाभिमान करोगे तो प्यारे फिर उस अभिमान का नाम अहंकार कौन कहेगा कारण कि' अहं ,यह शब्द' त्वं की और इदंकी अपेक्षा सेही तो है जब त्वं और इदं कहलाने वाले सब पदार्थों पर अहं की सील लगादी- तो फिर उस अहं का नाम आत्मा ही हो जायगा-जैसे दस चीजोंके दस मालिक होतेहैं तो पहिचानने के वास्ते उनके नामों में भेद होताहै या यों कहो कि उनके नाम रक्खे जातेहैं और जब दशों का मालिक एक होताहै तो उन पर मालिक के नाम लिखने की आवश्यकता नहीं रहती तैसे ही स्थावर जंगम रूप सर्व पदार्थों के तुम (तुम का लक्ष्य) ही मालिक हो तो फिर अहं- त्वं-इदं इन चिटोंकी जरूरत ही क्या

रहेगा यदि कहो कि अहंकार यानी देहाभिमान को छोड़ना ही
उचित है तो सच्चिदानन्द सिर्फ़ यही कहता है कि तुम कभी
ऐसा न कर सकोगे और उसका कारण यही है कि तुम
व्यापक हो छोड़ना और ग्रहण करना परिच्छिन्न में होता है
और यहा कारण है कि सच्चिदानन्द तुमसे एक शरीर के
अभिमान के छोड़ने को नहीं कहता बल्कि यह कहता है
कि तुम व्यापक हो इस वास्ते सर्व शरीरों में अहंकार करो,
यदि एक ही देहमें अहं बुद्धि करोगे और अन्य शरीरों का
मालिक दूसरों को बताओगे तो भी तुम मालिक तो सर्व
शरीरों के होही और रहोगे भी- सिवाय तुमारे सर्व शरीरों का
और अनंत ब्रह्मांडोंका दूसरा मालिक है ही नहीं, पर हां इस
कृपणता के ख्याल से अनहोते दुख को अनुभव करोगे ॐ

बिनासमझेभी 'अहंब्रह्म' की चिंतनाकर

अनुभूतेरभावेपि, ब्रह्मास्मीत्येव चिन्त्यताम् ।
अप्यसत्प्राप्यते ध्यानान्नित्याप्तं ब्रह्म किं पुनः ॥

देखो ? कैसा सुगम उपाय है अंतःकरण तथा इन्द्रिय-
रूपी दिल्लगी के शीशे तुमारी ही प्यारी अर्द्धांगी माया शक्ति
(फुरना) ने तुमारे प्रसन्न करने को तुमारे सामने रक्खे हैं
जैसे शीशे में शीशे के विकार से अवास्तविक और अद्भुत
रूप दीखता है तैसे प्यारे तू अंतःकरणादि में आपको तुच्छ
देखने लगा है क्यों धोखे में हँसी का विषय बनाता है तू तो

शुद्ध बुद्ध है ऐसी ही भावना कर जब तेरे शरीर का प्रादु-र्भाव हुआ था तब तू नाम रहित था परंतु अब यदि तू सोता भी होता है तो 'शिव शंकर' सुनते ही चौंक पड़ता है देख, प्रत्यक्ष देखले कि असत नाम ही तेरे वास्ते सत होरहा है तैसे ही वर्ण आश्रमादि भी जो कल्पित हैं उन का सत की नाईं भास होता है तो फिर 'अहंब्रह्मास्मि' यह भावना क्यों नहीं करता है ॥

वेखटके, निः संशय, वेद वाक्य में पूर्ण विश्वासी होकर यही भावना कर कि 'मैं ब्रह्म हूं' प्यारे वेद वाक्य 'तत्वमसि को मान-आपको शुद्ध बुद्ध समझ-नहीं तो वेद वचन को धोखा देने का इलज़ाम तेरे पर लग जावैगा-अगर हिम्मत करके बिना साक्षत्कार हुए भी अंहब्रह्मास्मि की धारणा करैगा तो कुछ काल में अवश्यमेव तेरी जीवोहं की मलिन वासना दूर हो जावैगी- क्या वेद वचन सिर्फ ऊपर २ से सुनने ही के वास्ते हैं ? गीता के वचन 'न जायते म्रियते इ० 'सुनकर भी यदि आप को जन्म मरण वान माना तो तेरे गीता पढ़ने का क्या लाभ हुआ ? क्यों कृष्ण भगवान् के वचन में विश्वास नहीं करता है ? नाम जाति आश्रम का मिथ्या विश्वास तूंने क्यों कर लिया है ? यह मिथ्या लैसन तूने जैसे पक्का कर लिया है तैसे सच्ची बात वेद की कही हुई -कृष्ण परमात्मा की बताई हुई क्यों नहीं पक्की करता अरे ले अब अनुभव से भी देखले-तू आपको जन्म मरण वान मानता है सो क्या तूने अपना जन्म देखा है ? और

मरण देखा है ? अगर नहीं तो तुझे ऐसा विश्वास करलेने का हक़ही क्या है— स्वप्न में भी तो अपना जन्म मानता था अब कह कि स्वप्न शरीर क्या माता के उदर से उत्पन्न हुआ था ? क्या स्वप्न में पूर्व की स्मृति और अनुभव सत्य था ! क्या तूने नहीं सुना 'कि मन के हारे हार है मन के जीतेजीत' मन यानी मानने सेही सब कुछ है तो क्यों आपको दुखी जीव मानता है 'हाय मैं मरूंगा' हाय मैं दुखी हूं' ऐसा व्यर्थ प्रलाप क्यों करता है वही मसल करता है कि अगर डूबने को जल नहीं हो तो नाक डुबाकर ही डूबमरना- तू शुद्ध ब्रह्म है एसे ही मान ॥

ॐ

कंस बध

ओ कृष्ण ! ओ प्यारे कान्हा ! ओ परमात्मा ! तू क्यों कंस (मन, अहंकार) के रोब में आगया ? तू कंस से इतना क्यों डरता है ? देख इस कंस ने ब्रज वासियों को (इन्द्रियों को) कैसा सता रक्खा है जो कंस की सत्ता में यह न रहें तो कैसे-स्वतंत्र हैं इन को कुछ भी क्लेश नहीं हो, परंतु जब मन की सत्ता में वर्त्तते हैं तब नाना प्रकार के कष्ट पाते हैं—और इन के साथ में मूढ कंस भी दुखी होता है—दोनों को परस्पर क्लेश होता है, हे ब्रजराज हे मर्यादा पुरुषोत्तम, इस कंस को किसी प्रकार चूर्ण करदे ब्रज गोपिकाओं को सुख दे, तू ज़रा अपने ग्वाल वालों की मंडली (विवेक वैराग्य) में खबर कर दे और उनको साथ

ले कर कंस के महल की ओर तो प्रयाण कर. देख तुझे युद्ध भी न करनी पड़ेगा तेरे रथ की धजा (सर्वं खल्विदं ब्रह्म को देखते ही तेरी शरण हो जायगा यह दुष्ट कंस अहंकार रूपी मदिरा कर के दुष्ट कर्म कर रहा है उस का यह अहंकार तुझे देखते ही ऐसे हो जायगा जैसे वर्फ का कणिका सूर्य को देखते ही हो जाता है–

देख तो सही कि इस ने अपनी सत्ता कैसी जमा रक्खी है, गोपिका तो अपना अपना काम करती हैं और यह बीच में आप कूद पड़ता है, हे ब्रजराज ! तू तो ब्रज का राजा है और तेरी बेपरवाही से यह कंस आप राजा बन गया है– उतार ले इस का शाही ताज (हटाले अपनी सत्ता) फिर इसे कोई कौड़ी को भी न पूंछेगा. यह मैं जानता हूं कि राज्यों में पोल होती है और बड़े राज्य में बड़ी पोल होती है तैसे ही हे विश्वपति यह तेरे बड़े राज्य की बड़ी पोल (अंधेर) है कि कंस खुद मालिक बन बैठा है, खींच ले इस के केश पकड़कर (खींच ले इस की छोटी मोटी वासनाओं को) और यह तेरे चरणों में आन पड़ेगा तेरे वशवर्ती हो जायगा— ॐ ॐ ॐ

माया का चरखा

जैसे रुई में से सूत निकल कर वस्त्र रूप नज़र आता है तैसे मुझ आत्म रूपी रुई से चमत्कार–प्रकाश–विस्फुलिंगवत्–किरणों की तरह वृत्तियां

निकलकर जगत् रूपी विस्तीर्ण पट–विचित्र रंग वाला बना हुआ सा नज़र आता है और जैसे सूर्य से किरणें न निकलती हुई भी निकलती सी भासती है तैसे मुझे शुद्ध निर्विकार एक रस आत्मा में से वृत्ति निकलती सी भासती हैं वास्तव में निकलती नहीं हैं यह जगत् मुझ अद्वय आत्म रूपी महाराज की अर्द्धांगी अचिन्त्य शक्ति रूप महा माया का चरखा है कात २ कर सूत के बुने हुए–वृत्तियों के बने हुए–नानारंगों वाले संसार रूप पट को तयार करके पेश करती है–मुझ आत्म देव अपने पति को॥ जिस पट को (नाम रूप को) अपने शरीर पर धारण करके मैं मायावी की नाई छुपा हुवा हूं–तरंगों ने मुझ समुद्र को छुपाया है–किरणों से मैं सूर्य छुप गया हूं प्यारे यदि मेरा दर्शन चाहते हो–नंगमनंग देखना चाहते हो–शिव को दिगंबर रूप में दर्शन करने की इच्छा है तो देखो—नज़र मारो—किरणें किसके प्रकाश में दे[ख] हो? वही मैं हूं—तरंग काहे की हैं? वही मैं हूं?—नाना प्रकार का जगत सब मुझ चित्स्वरूप की किरणें हैं मुझ महान् आत्म रूपी सूर्य का ही प्रकाश है और किरणें मुझ सूर्य से भिन्न होकर ढूंढने से भी नहीं मिलती हैं कारण कि सूर्य और किरणों में भेद नहीं तैसे ही मैं आत्म देव ही जगत् रूप हूं मुझ से प्रथक जगत् की सत्ता का अत्यंताभाव है–सूर्य में तो किरणें दीखती ही रहेंगी स्वभाविक-बिना प्रयत्न-मुझ आत्म देव में तो सृष्टि बिना हुई भासेही जायगी-माया फुरना रूपी शक्ति का चरखा चला ही करेगा-जानलो २ यह जगत आत्मा से भिन्न नहीं–' हरिरेव जगज्जगदेव हरि ' का मामला

है भाष्यकार स्वामी कहते हैं ॥
एप विशेपो विदुषां पश्यंतोपि प्रपंच संसारम्—प्रथगात्मनो न कि चित्पश्येयु सफल निगम निर्णीतात् ॥ ॐ ॐ ॐ

अघोरी, शिव

में आत्म देव शिव रूप हूं-महा अघोरी-इंद्रियां मुझ स्मशान वासी की कुत्ते कुत्ती हैं-शरीर जितने हैं वे स्मशान भूमि में चिताऐं हैं और इन्द्रियां मन बुद्धि आदि कुत्ते कुत्तियां हैं जो शरीर रूपी लाशों पर डटे खड़े हैं और भोजन कर रहे हैं ऐ शरीर रूपी चिताओं में पड़े हुवे मुर्दो भागो-भाग जाओ-यह चिता हैं चिता, शरीर नहीं है इन में से निकलो और शिव हो, चिता में पड़े हुवे (शरीराभिमान में) तो मुर्दे ही रहोगे, शरीर में से बाहर हो जाओ इस चिता से अलग हो और जानो चिन्ता के सर पर पानी फिर गया, निश्चिन्त हो जाओगे- ॐ

देश विदेश कोई नहीं है—
सब देश अपने ही हैं

अहा माया का अजीब चकमा है, बड़े बड़े विद्वान, ग्रेजूएट, फिलोसोफर भी इस के नचाये नाच रहे हैं, यह संसार स्वप्नवत् है, नहीं नहीं, स्वप्न ही है-

[आत्मा (परमात्मा) रूपी समुद्र की तरंगें हैं]–और जैसे जल में बुल बुला होता है तैसे है, और शरीर क्षण भंगुर तिसपर भी इस के बीच में इतनी आसक्ति कि राग द्वेष का बाज़ार गर्म है और सांसारिक वस्तुओं का ऐसा पक्का बंदोबस्त करना चाहते हैं कि ज़रा भी खटका न रहे, जानों कभी संसार को छोड़ेंगे नहीं–

सच्चिदानन्द को उन महात्माओं, विद्वानों और Metaphisics यानी वेदान्त के फ़िलासोफ़रों को देखकर आश्चर्य होता है जो देशोन्नति के लग्न में मग्न हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि' जगत् मिथ्या है, स्वप्नवत् है, चार दिन की धूम धाम है' क्या वह इस Contradiction को नहीं विचारते ? इस विरुद्धता पर ध्यान नहीं देते ? जिस को अच्छी तरह मालूम होजाता है कि सिंह और आम का वृक्ष दोनों झूटे हैं (बाज़ीगर के बनाये हुवे) वह हर्गिज़ १००० भी सिंह में द्वेष और आम्रफल में राग न करेगा, अगर करें तो यह बात निश्चित जानना चाहिये कि उस को यह नहीं मालूम हुआ है कि सिंह और आम ऐंद्रजालिक हैं बल्कि वे सत्य हैं ऐसा जानता है अभी थोड़े दिन हुवे सच्चिदानन्द ने एक स० पत्र में बाचा था कि एक आश्रम खोला गया है और उस में रहने के वास्ते ऐसे महात्माओं को Invite निमंत्रण किया था कि जो संसार को मिथ्या जान उस से विरक्त चित्त हों और देशोन्नति करने में जिन का मन लग्न हो आश्चर्य २ यह कैसे हो सक्ता है संसार को

मिथ्या जान उस से विरक्त और फिर उसी में मन को लगाना ? यह तो ओस के मोती इकट्ठे करने की तरह है, जिस का चित्त संसार से विरक्त है उस का पहला काम तो God Realization ईश्वर परायणता, आत्म विचार, अपना कल्याण करना है और जिन महा पुरुषों ने आत्म शोधन करलिया है वह सिर्फ़ देशभक्त ही नहीं हैं बलिक वह सब पृथ्वी भर के जीवों को, अनंत ब्रह्मांडों को, अपना आत्मा ही समझते हैं वे महात्मा India और England में सिर्फ़ इतना, नाम मात्र का फ़र्क़ (Nominal difference) जानते हैं जैसे मनुष्य अपने दो नेत्रों में फ़र्क़ देखे. शिव २ क्या राग द्वेष वान् को कभी आनंद प्राप्त हो सक्ता है ? हर्गिज नहीं और यह बात स्पष्ट Clear है कि जो एक देश की उन्नति ही चाहेगा वह ज़रूर अन्य देश को बुरी दृष्टि से देखेगा, यह कौन बुद्धिमान कह सक्ता है कि ऐसा पुरुष आनन्द रूप परमात्मा प्राप्त को होसकेगा ?

क्या मैं सिर्फ़ India ही को अपना देश (स्वदेश) जानूं ? हर्गिज़ २ नहीं सच्चिदानन्द रूपी महा सागर में इंगलैंड, इन्डिया, एफ्रीका, काबुल, अमरीका आदिक पृथ्वी के देश क्या समस्त पृथ्वी और सूर्य और चन्द्र लोक तक तरंगों की तरह हैं—अब कहो समुद्र कैसे किसी अपनी तरंग से आप को प्रथक मान ले, हां जो सिर्फ़ ३॥ हाथ के टापू का कैदी है वह भले ऐसी समझे परंतु सच्चिदानन्द हर हर हर हर कभी एक देश की कैद में न फँसेगा — अहा हा हा

क्या मैं Indian हिंदी हूं? नहीं नहीं मैं तो अगर कहा जा-
सक्ता हूं तो सर्व रूप हूं— मैं ही अंग्रेज हूं मैं ही मुसलमान
हूं और मैं ही हिंदु हूं, सिर्फ इतना ही नहीं ईंट पहाड वृक्ष
आकाश पृथ्वी आदि भी मैं ही हूं [स्वप्नवत्]—यह अस्थि
मांस का पिंड मात्र ही मैं नहीं हूं मैं दृश्य और अदृश्य जगत
के अंदर ऐसा सूक्ष्मता से व्यापक हूं कि कोई सांसारिक
दृष्टांत नहीं बनसक्ता सिवाय आकाश के और स्थूल भी ऐसा
हूं कि मुझसे बड़ा और कोई है भी नहीं—जैसे रज्जूसर्प में रज्जू
है तैसे संसार में मैं हूं— ॐ ॐ

भला कितने आश्चर्य की वार्त्ता है कि संसार को स्वप्नवत्
मिथ्या जानने पर—कुल जगत को अपना ही विवर्त्त मानने
पर-ऐसा निश्चय करलेने पर कि स्थावर जंगम प्राणी मात्र
मुझ से पृथक नहीं है—फिर यह वासना उदय हो कि फलां आदमी
का बुरा हो—शिव २ अगर ऐसा हो तो किसी २ ॥ हाथ के
ऐंडमन्न के कैदी से तो हो भी जाय लेकिन सर्वात्म दृष्टि वाले
सन्यासी से कैसे हो सकै? आज कल बहुधा देशोन्नति के
राग गाये जाते हैं। क्या देशोन्नति इन बातों से होती है
कि विदेश को बुरी दृष्टि से देखना? हर्गिज़ २ नहीं—सच्चे बनो
प्रेमी बनो—वेर भाव त्याग करो-प्राणी मात्र को ईश्वर के पुत्र-
वत जान भाई चारे Universal Brother-hood का बाज़ार
गर्म करो फिर उन्नति तुमारी दासी बनकर रहेगी कम से कम
सन्यासी लोगों को तो चाहिये ही कि आत्मवत् जगत को देखें

ॐ ॐ ॐ

ॐ

हरिरेव जगत्

हे प्रिय आत्मन्! आप जानते हो कि सूर्य की किरणों में सब प्रकार के रंग भासते हैं कल्पना करो कि सूर्य बहिर्मुख हो-अपने चारों ओर देखै यानी अपने आत्मत्व मात्र में स्थित न हो तो उस को खुद भी चारों तर्फ़ रंग ही रंग नज़र आवेंगे और यदि वह अपने आत्म भाव में रहे तो केवल प्रकाश ही प्रकाश रह जायगा कारण कि सूर्य वास्तव में प्रकाश मात्र ही है रंग तो उसमें प्रातीतिक हैं जैसे आकाश में नीलता, तैसे ही, हे सूर्यों के सूर्य आत्म देव तू आत्म भाव से-अपने वास्तव स्वरूप से हटता है तब तुझ को तरह २ के रंग (सृष्टि) भासते हैं और अंतर्मुख होकर देखै तो सृष्टि के पते भी नहीं आत्म रूपी मणि में मन रूपी किरण है और उस किरण में पांच प्रकार के रंग दीखते हैं जैसे कोई आदमी हरे रंग का चश्मा लगाले तो उसे चारों ओर हरा रंग अपने से प्रथक भासेगा, तैसे तुझ आत्म रूपी मणि की प्रभा यानी मन में शब्द स्पर्श रूप रस गंध, यह पांच रंग हैं गोया पचरंगा चश्मा है उस में होकर तू शब्दादि को बाहर देखता है- जैसे हरे चश्मे से हरा रंग बाहर स्थित जैसा दीखता है तैसे शब्दादि रूप सृष्टि को तू इस तरह देखता है कि जानो बाहर है, वास्तव में अन हुई सृष्टि तेरे ही प्रकाश यानी कि-रणों में दीखती है-यदि तू कहे कि हम को बाहर की सृष्टि छूने में भी आती है फिर कैसे मानें कि बाहर नहीं है सो

प्यारे तेरे त्वचा (स्पर्श) रूपी चश्मे से ऐसा भासता है-
दर असल यह सृष्टि जिसे तू वाहर स्थित जानता है तेरी
ही प्रभा है, तेरी ही किरणें हैं, तू ही है जैसे स्वप्न की सृष्टि
तेरे ही अन्तर है, नहीं नहीं तुझमें ही आकाश की नीलता-
वत् मिथ्या है तो भी तू उसे बहिः स्थितवत् देखता है तैसे ही
यहां भी जान, तेरी ही वृत्ति सृष्टि हो कर भासती है, अगर
किसी के सर में बड़ा भारी ज़ख्म हो और कहता हो, चि-
ल्लाता हो कि' हाय मरा, मुझे बड़ा दुख है' जख्म में बहुत
ज़ोर का दर्द है, उसी वक्त कोई उस का मित्र आकर कहे
कि आज तुम से बड़े आफ़ीसर सख्त नाराज़ हुवे, ये पहिले
हफ्ते के हिसाब में २५०) का गोल माल उन्हों ने नोट की
है, तो क्या होगा ? जुरूर उस को उस वक्त-एक या दो
सैकिन्ड को दर्द न होता भासैगा- बहुत क्या, सोजाने पर
दर्द नहीं मालूम होता इससे भी साफ़ मालूम होता है कि
जो तुमको भासता है -वह तुमारा मन ही तुम को वैसा हो
कर भासता है,-सृष्टि और मन में भेद नहीं और मन और तुम
में भी भेद नहीं जैसे सुवर्ण और कंकण में भेद नहीं है सोना
ही सोना है कंकण नाममात्र मिथ्या है तैसे ही आत्म रूपी सूर्य
से मन रूपी किरण प्रथक नहीं है और मन रूपी किरण से
जगत रूपी नाना प्रकार के रंग प्रथक नहीं हैं तात्पर्य कि
आत्मा यानी ब्रह्म और जगत् एक ही के नाम हैं परन्तु आत्मा
वास्तविक है और जगत् प्रातीतिक है-यहां वाध समानाधि
करण्य है ॥ ॐ

ॐ

आत्म—लहरी

जैसे समुद्र में एक दम लहर उठती हैं तैसे तुझ आत्म रूपी चिन्मात्र सत्ता में संसार रूपी लहरी उठती है, क्या तूने नहीं अनुभव किया कि जैसे सोम समुद्र जल में लहर उठती हैं और फिर लय होजती हैं और फिर समुद्र शांत रूप जैसे पहले था तैमे होजाता है, तैसे ही तेरे में स्वप्न सृष्टि रूप लहरियां उठकर और फिर जागने पर स्वप्न सृष्टि का प्रलय हो कर तू जैसा अकेला स्वप्न से पहिले था तैसा ही अकेला रहजाता है ? स्वप्न में तू स्वप्न को जाग्रत कहता है और वहां की क्षणिक सृष्टि को पुराना मानता है और वहां के क्षणिक, प्रातीतिक देह को पुरानी मानता है तैसे ही यहां मान रहा है, यह तेरा जागृत सृष्टि स्वप्न ही तो है और स्वप्न ही में तू यह बातें सुन रहा है त्यागदे त्यागदे इस मिथ्या अभिमान को और सुखी होजा विद्यारण्य मुनीश्वर ने कैसा सुंदर कहा है:—मय्यखंड सुखाम्भोधौ बहुधा विश्व वीचयः। उत्पद्यंते विलीयंते माया मारुत विभ्रमात् ॥

प्यारे ! जैसे समुद्र को लहरों के पैदा और नाश होने से लाभ व हानी नहीं तैसे तेरे में सृष्टि भासे तो क्या और न भासे तो क्या ? तू ज्यों का त्यों है, जान, जानले आपेको और आनन्द के तार बजा ॐ जल में जैसे तरंग होती हैं

तैसे आत्मा में सृष्टि नहीं होती, फ़र्क़ इतना है कि तरंग तो जल का परिणाम है और सृष्टि आत्मा का परिमाण नहीं है विवर्त्त है—ऐसे मौक़े पर ।झिलमिलाने या जगमगाने का दृष्टांत याद करलो ॥ ॐ ॥

ॐ तारे का अस्ली स्वरूप अस्तित्व मात्र प्रकाश मात्र (भान मात्र) है जगमगाने यानी दोनों क़िस्म की क्रियाओं के मध्यवर्त्ती है तैसे ही आत्मा का अस्ली स्वरूप स्वप्न सुपुप्ति यानी सृष्टि और प्रलय के मध्यवर्त्ती है अस्ति मात्र, भान मात्र और द्वैत का अत्यंताभाव होने से आनन्द मात्र क्यों कि दुःख यानी भय दूसरे के अभाव में नहीं होता है श्रुतिः द्वितीयात् वै भयं भवति' सूक्ष्मदर्शी को आत्मा का ज्ञान अत्यंत सुगमहै और अज्ञानी unattentive को कठिन है सच्चिदानन्द ही सिर्फ़ ब्रह्मविद्या—आत्म विद्या को सुगम नहीं कहता है, श्री कृष्ण परमात्मा भी यही कहते हैं तहां श्लोक राज विद्या, राज गुह्य० (गीता अ ६ श्लोक २)

ॐ ॐ ॐ

सृष्टि का उदय अस्त

जा गृत. स्वप्न सुपुप्ति यह तीनों अवस्था मायिक हैं और तुरियावस्था [इनकी अवस्था जा० स्व० सु० की अपेक्षा से कहते हैं वर्नः तुरियावस्था नहीं है तुरिया-ब्रह्मआत्मा तीनों पर्याय हैं] पारमार्थिक है, जागृत = स्वप्न भ्रम त्रि.

ायिक अवस्था सिर्फ़ दो स्वप्न और सुषुप्ति रहीं और पारमा-
र्थक तुरिया है। तुरियामें स्वप्न और सुषुप्ति कल्पित हैं, अथवा
ः सृष्टि के अंतर्गत स्वप्न सुषुप्ति हैं जैसे अग्नि में उष्णता
ाणी में चमत्कार तैसे तुरिया में सृष्टि - आत्मा में स्वप्न
सुषुप्ति रूप जगत हैं जैसे स्वयं प्रकाश तारे में क्रिया [हरकत]
दीखती है (उसके स्वयं प्रकाशता के कारण) जानो तारा
आंख खोलता है और बंद करता है वास्तव में यह दोनों
क्रिया प्रातीतिक (नमूदी) हैं अगर कोई तारे का स्वरूप
दरयाफ़्त करे तो नहीं कहा जासक्ता कि कैसा है कारण कि
आंख खोलने और बंद करने कीसी क्रिया हरवक्त होती
ही रहती हैं- हां यह कहा जासक्ता है कि इन दोनों नमूदी
क्रियाओं का अधिष्ठान है तैसे ही प्यारे ! आत्म रूपी स्वयं-
प्रकाश जोति में स्वप्न और सुषुप्ति नमूदी हैं जिसेंम यह
स्वप्न और सुषुप्ति नमूद होते हैं वही आत्मा-परमात्मा है-
आत्मा में तारेवत् जब आंख खोलने कीसी क्रिया दीखती
है तो जगत भासता है (अहंकारसे आदि लेकर मोक्ष पर्यंत)
और आंख बंद होने की सी क्रिया दीखती है तो सृष्टि का
प्रलय होजाता है-॥ बंध-मोक्ष आदिक, कर्म धर्म, पाप, पुण्य,
शुभ, अशुभ का कच्चा चिट्ठा यह निकला, वास्तव में संसार
ही नहीं तो फिर हेयोपादेय कहां रहे ? सच्चिदानन्द की
दृष्टि में तो बंध मोक्ष बालकों की सी कहानी है – आत्म
रूपी स्वयंप्रकाश ज्योति अपने आप में ज्यों की त्यों स्थित
है उदय अस्त से रहित—हां नमूदी उदय अस्त सितारे के
जगमगाने वत होता है जिसका भले ही स्वप्न (अहंकार से

अधिष्ठान जानता हुआ कर्तृत्वभाव को कदापि प्राप्त नहीं होता—वह जानता है कि न मैं इच्छा करने वाला हूं और न मुझ में राग द्वेष इच्छा आदि होना संभव ही है जैसे अग्नि में शीतलता होना संभव नहीं है तैसे उस में भले बुरे व्यवहार में प्रवृत्त होते हुवे भी अहंकृत भाव नहीं होता और इसी वास्ते उस की बुद्धि लिपायमान नहीं होती, वह बुद्धि आदिक सब को आत्मरूप देखता है: एष विशेषो, विदुषां पश्यतोपि प्रपंच संसारम्, पृथगात्मनो न किंचिद् पश्येयु सफल निगम निर्णीतात— ॥ ज्ञानी का निश्चयः—

जडत्व बद्धत्व विमुक्ततादयः। कर्तृत्वभोक्तृत्वखलत्व मत्तता; बुद्धेर्विकल्पा नहि सन्ति वस्तुतःस्वस्मिन् परेब्रह्मणि केवलेऽद्वये॥

भोगने और न भोगने, गृहण और त्याग, कर्तव्य और अकर्तव्य, हेय और उपादेय उसके खुदाई इजलास [आत्म स्वरूप] में फटक भी नहीं सक्ते—अहंकार से ही जिसने आप को भिन्न जान लिया (और है ही) फिर उसको लेप कैसे हो—वह स्थावर जंगम शरीरों की और उनकी क्रियाओं की ओर ध्यान ही नहीं करता और वह अड्डा ही उसने अपने घर से उखाड़ दिया है जिस (अहंकार) पर ध्यान रूपी पक्षी आकर बैठते हैं (शंका) प्रारब्ध तो ज्ञानी को भी भोगना पड़ता है (समा०) हर्गिज़ २ नहीं, ज्यादः दलीलों और वाद विवाद में विस्तार को रोकने के लिये प्रारब्धवादी महा पुरुषों से सच्चिदानन्द इतना ही बड़े प्यार के साथ कहता है 'क्या ब्रह्म को भी प्रारब्ध का कलंक लगा हुआ है? क्या इस शंक

को इस तौर से कहने का कि 'प्रारब्ध तो ब्रह्म की भी निवृत्त नहीं होसक्ती है' आप को साहस है? यदि यह साहस हो तो कहो कारण कि ज्ञानी और ब्रह्म में भेद नहीं है तहां श्रुतिः- 'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति' प्यारे! जो परमेश्वर है वही परमेश्वर को जानता है और जो परमेश्वरको जानता है वह परमेश्वर ही होता है 'परमेश्वर है, सर्वव्यापक है सर्वशक्तिमान है' ऐसा बोलना कठिन नहीं है परंतु परमेश्वर के आस्तित्व और सर्वव्यापकता को जो अपने अनुभव द्वारा देखता है वही सचा कहने वाला है और सच्चिदानन्द बड़े ज़ोर से कहता है कि जो अनुभव द्वारा जानैगा कि परमेश्वर है और सर्वव्यापक है सत चित् आनंद रूप है (कहने मात्र से काम न चलैगा दूसरों से सुन कर या पुस्तकों में बांच कर कहने से लाभ नहीं है) वह खुद अपने ही को सच्चिदानन्द देखैगा. जीव ब्रह्म की एकता में संशय करने वाले किताबें देख २ कर कहते और लड़ते हैं कि वह सर्वव्यापक है ऐसा है तैसा है उनको अपना खुद का तजरुबा नहीं है और जिसको है वह भेद नहीं देखता है-ज्ञानी ब्रह्म है यह वेद संमत सिद्धांत है तो ब्रह्म का भी प्रारब्ध? हर २ यह कौन कहै और कौन माने? भा० स्वामी कहते हैं-

देहस्यापि प्रपंचत्वात् प्रारब्धावस्थिति कुतः
अज्ञानि जनबोधार्थं प्रारब्धं वक्ति वै श्रुतिः
ॐ ॐ ॐ

बग़ल में लड़का—शहर में ढंढोरा

सच्चिदानन्द ने गंगा तट पर एक आदमी के विषयमें सुनाया था कि वह गंगा न्हाने बस्ती से अपने ३ वर्ष के पुत्र सहित आया, स्नान करके लड़के को कन्धे पर बिठाकर घर की तर्फ़ चला (लड़के को रोज़ नहीं लाता था) चलते वक्त एक लोटा भंग चढ़ाली, रास्ते में भंग की धुन में चलते चलते लड़के की याद आई, लौट कर गंगा पर पुत्र को ढूंढा, ख़ैर न मिलने पर लाचार यह समझ कर कि किसी दूसरे लड़के के साथ घर चला गया होगा घर आया घर में घुसने से पेश्तर बस्ती में इधर उधर, बाज़ार में, और दूसरे लड़कों में बिला किसी से बोल-चाल किये तालाश करता रहा आख़िर अत्यंत दुखी होकर घर की तरफ़ आया जिस वक्त घर में घुसने लगा तो कन्धे पर बैठे लड़के के सर पर चोट लगने पर लड़का रोने लगा तब उस को (भंगड़ को) मालूम हुआ कि लड़का मेरा नहीं खोया था हर वक्त, तलाश करते वक्त भी मेरे पास ही रहा था-

प्यारे तुम को परमात्मा की तालाश है ? अव्वल तो यही मज़ाक़ की बात है कि सर्व व्यापक की तालाश। परमात्मा सब जगह है तो उस की तालाश कैसी ? सब को परमात्मा रूप ही देखो; अगर नाशवान जगत् को परमात्मा नहीं मानते तो बदलने वाली चीज़ों को निकाल कर जो

न बदलने वाला [अस्ति, भाति, प्रिय] है उस को देखो अगर इतना भी वासना, विषयों की वासना रूपी नशे में बेहोश होने के सबब नहीं देख सक्ते तो जिस वक्त वह खुद पूर्ण रूप से प्रकाशे तब तो उस को जान लो, या उस वक्त भी न जानोगे ? तब तो उस गंगा तट के भंगड़ से भी बेवक़ूफ़ हो, गं० त० का भंगड़ आप को नहीं भूला था बच्चे को भूला था और तुम आप को भूल गये गं० त० का भंगड लड़के के रोने पर होश में आगया था, तुम परमात्मा के खुद चेताने पर भी प्रमाद से उस का अनादर करते हो, देखो तुम ने सुना है कि जिस में से सृष्टि उत्पन्न होती है जिसमें स्थित है, जिस में लय होती है वही परमात्मा है, स्वप्न की सृष्टि लय किस में होती है ? जागृत सृष्टि किस में से निकल पड़ती है, सुषुप्ति में स्वप्न और जागृत सृष्टि को, सूर्य चन्द्रमादि को कौन निगल जाता है ? क्या तुम इस का विचार ग़ौर से न करोगे ? स्वप्न की सृष्टि के हर्त्ता कर्त्ता को मालूम करो फिर यदि जागृत और स्वप्न में विलक्षणता न मालूम हो (विचारने पर) तो उसी कर्त्ता हर्त्ता को जागृत का कर्त्ता हर्त्ता भी मान लो—

यह समझ में आजावे तो फिर क्षण २ में उस का दर्शन करो, एक तरह की वृत्ति निवृत्त होकर दूसरी वृत्ति आवे तो उन दोनों वृत्तियों के उत्पत्ति और लय स्थान को नोट करो वही परमात्मा है, अच्छा परमात्मा को जाने दो, तुम पहले आप को ही मालूम कर लो' खुदरा शनास्त खुदारा शनास्त' आप कौन

हो और कितने बड़े हो ? क्या तुम ३॥ हाथ के हो ? नहीं, यह तो हाड़ चाम का खोखा है और तुम कहते भी हो कि मेरा देह मेरा मन मेरी बुद्धि वगैरः यह तुम्हारे हैं न कि यह तुम खुद हो-बताओ कौन हो? स्वप्न में जाकर स्वप्न देह को अपनाते हो और यहां इसको- तुमारा कौन सा देह है कहो ? ॐ

मुनादी

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्न कर्मकृत्।

हे सोनेवाले, निद्रावश प्राणी ? तू इस समय आपही आप है न सृष्टि है न कर्त्ता क्रिया कर्मादि हैं परंतु तू इस समय पहाड़ नदी समुद्रादि विश्व देख रहा है और इस कालमें क्रिया भी देख रहा है- हाय पहाड़ से पैर फिसलकर आपको गिरा मानकर रोता है- देर होगई देर होगई ऐसा मानकर कैसा जल्दी २ स्टेशन की तर्फ दौड़ता है रोता है, हंसता है, लड़ता है झगड़ता है- भागता है बैठता है इत्यादि क्रिया देखता है-ओहो कैलकटा मेल कैसी तेज़ जारहा है- प्यारे जागकर इन सब क्रियाओं को तूभी न मानेगा- इन सब कर्मों को अकर्म कहेगा- अगर इसी समय इन सब कर्मों में आपको-अकर्त्ता और कर्मोंको अकर्म रूप देखे तो फिर तेरी बराबर दूसरा कौन बुद्धिमान ! और वास्तव में तू इस वक्त भी करता रहा ही नहीं है लेकिन कर्त्ता कर्म क्रिया आदि मिथ्या मान रहा है.मत माने- प्यारे सेकड़ों बार स्वप्न में कर्मों को मान २ कर फिर उन्हीं कर्मों को

जागकर अकर्म रूप कहते २ मुद्दत होगई- अब के तो इसी समय इन प्रातीतिक कर्मों को अकर्म रूप कहदे और मान ले, इन नमूदी प्रातीतिक कर्मों में आपको, आत्मा को, अकर्म अक्रिय रूप देख और आत्मा (अकर्म) में इन कर्मों को केवल प्रातीतिक, नहुए जैसे— मान अगर ऐसा अभी मान ले (पीछे तो मानेहीगा) तो श्री कृष्ण परमात्मा तुझे योगी और बुद्धिमान का तगमा देते हैं और लिखते हैं कि सर्व कुछ करने योग्य कर्म तू कर रहा है तुझको अब कुछ कर्तव्य नहीं है, अगर ऐसा न करेगा यानी न मानैगा तो वही मसल होगी तेरे ऊपर आइद (लागू-फबती) कौनसी ! वही चमार वाली, अबके मारे तब जानूं, यह क्रिया जो तुझको दीखती हैं स्वप्न और जागृत में यह उसी तरह हैं जैसे सूर्य में धबक २, झिल मिल २ होती है-सूर्य में दर असल नहीं है आंख से ऐसी दीखती है क्यों कि आंख उस के (सूर्य के) सामने ठहर नहीं सक्ती है उसका प्रकाश कहां और आंख की बिसात क्या ? तैसे ही तुझ को आत्मा रूपी सूर्य में क्रिया दीखती है सो तुच्छ, ज़रा से, अहंकार रूपी आंख में हो कर दीखती है, फेंक दे इस अहंकार को, इस में हो कर आप को मत देख इस बिचारे की क्या बिसात है जो संमुख होसके, बिचारा कांपने लगता है' अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमितिमन्यते' यह कृष्ण का वाक्य पढ़ते पढ़ते बुड्ढा होगया, अरे इसे धारण कब करेगा ? इस को धारण करते ही प्यारे तू मुक्त रूप है कर धारण. मान आप को अकर्ता यह धारणा खुदाई दर-

धाश है और उन्हीं किरणों के किसी एक परिच्छिन्न रंग में अधिक प्रीति होकर एक ही वृत्ति रूप किरण या रंग के साथ इस प्रकार तदाकार होजाना कि बाकी सर्व रंगों के भंडार अपने वास्तव स्वरूप को भूल जाना जीवका स्वरूप है (बनाने वाला ही बनाई हुई वस्तु पर आसक्त होगया)

हे सूर्यों के सूर्य तू क्यों एकही शरीर रूप वृत्ति में ढिसर पड़ा है ? तेरे अभिमान का स्थान जो यह शरीर है तिस जैसे और तिस से विलक्षण नाना प्रकार के स्थावर जंगम रूप शरीर जितने हैं वे सब तेरी ही किरणें हैं तू एक के बीच अभिमान करके देश काल वस्तु परिच्छेद की ठोकरें क्यों खारहा है ? हे जीव बने हुए ईश्वर ! सब में अभिमान कर और राग द्वेष की कैद से छूट, फैलादे सब में अपने महदूद बनाये हुए अहंकार को. तोड़दे जलखाने की दीवार (शरीराभिमान) और देख मैदान में खड़े होकर कि सूर्य चन्द्रमा से आदि लेकर सब तेरा ही प्रकाश है-अपने ही प्रकाश रूप ३ लोक १४ भुवन को देखता हुआ तू ईश्वर है और प्यारे जब तू अपनी किरणों को इस तरह जानैगा जैसे अग्नि ऊष्णता को, फूल गंध को, वर्फ शीतलता को, तब तू अपनी स्थिती ब्रह्म रूप जान, आप को एक ही अहंकार रूपी कैद में मानकर तू जीव है और यह जगत मुझ ईश्वर की वासना- इच्छा रूप [एकोहं बहुस्यामः] है यानी मेरा ही स्वप्न है- मैं ही हूं मेरा ही स्वरुप है- मैं ही कली रूप । रूप जगत हूं- ऐसा जानता हुआ तू ईश्वर है और

स्वप्न, प्रातीतिक विश्व, दर असल हुआ नहीं है, मेरा विवर्त्त है, या, मैं स्वप्न काल में और स्वप्न काल के पश्चात् भी ज्यों का त्यों सुषुप्तिवत् हूं, ऐसा जानता हुआ (अनुभव से) तू ब्रह्म रूप है—

ॐ ॐ ॐ

तूही तेरा राम

जिज्ञासू—भला मैं राम कैसे हो सक्ता हूं? राम तो सर्व शक्तिवान है, आनन्द रूप है और मरता जीता नहीं है और मैं तो एक चींटी भी नहीं बना सक्ता, दुखी हो जाता हूं और मरने जन्मने वाला हूं मैं तो अल्पज्ञ जीव हूं—

ज्ञानी—प्यारे तू अल्पज्ञ शक्ति वाला नहीं है तू सर्व शक्ति मान है तू चींटी तो क्या ब्रह्मांड को रचने की शक्ति रखता है और यह अनन्त ब्रह्मांड तेरी ही रचना है, और तू आनन्द रूप है, चंचल मन बुद्धि रूप जल में उन की चंचलता के कारण तेरा स्वरूप दुख रूप प्रतीत होता होगा सो तुझे क्या? मैले और उछलते हुवे जल में सूर्य का प्रतिबिंब विपरीत दीखे तो क्या सूर्य विपर्यय भाव को प्राप्त हो जाता है? और तू मरता भी कभी नहीं है प्यारे विचार कि यदि तू अब तक एक दफे भी मरगया होता तो अब कहां से होता और क्या तू ने अपनी मृत्यु यानी नाश देखा है?

धाश है और उन्हीं किरणों के किसी एक परिच्छिन्न रंग में अधिक प्रीति होकर एक ही वृत्ति रूप किरण या रंग के साथ इस प्रकार तदाकार होजाना कि बाकी सर्व रंगों के भंडार अपने वास्तव स्वरूप को भूल जाना जीवका स्वरूप है (बनाने वाला ही बनाई हुई वस्तु पर आसक्त होगया)

हे सूर्यों के सूर्य तू क्यों एकही शरीर रूप वृत्ति में ढिसर पड़ा है ? तेरे अभिमान का स्थान जो यह शरीर है तिस जैसे और तिस से विलक्षण नाना प्रकार के स्थावर जंगम रूप शरीर जितने हैं वे सब तेरी ही किरणें हैं तू एक के बीच अभिमान करके देश काल वस्तु परिच्छेद की ठोकरें क्यों खारहा है ? हे जीव बने हुए ईश्वर ! सब में अभिमान कर और राग द्वेष की कैद से छूट, फैलादे सब में अपने महदूद बनाये हुए अहंकार को. तोड़दे जलखाने की दीवार (शरीराभिमान) और देख मैदान में खड़े होकर कि सूर्य चन्द्रमा से आदि लेकर सब तेरा ही प्रकाश है-अपने ही प्रकाश रूप ३ लोक १४ भुवन को देखता हुआ तू ईश्वर है और प्यारे जब तू अपनी किरणों को इस तरह जानेगा जैसे अग्नि उष्णता को, फूल गंध को, बर्फ शीतलता को, तब तू अपनी स्थिती ब्रह्म रूप जान, आप को एक ही अहंकार रूपी कैद में मानकर तू जीव है और यह जगत शुद्ध ईश्वर की कामना- इच्छा रूप [एकोहं बहुस्यामः] है यानी मेरा ही रूप है- मैं ही हूं मेरा ही स्वरूप है- मैं ही कर्त्ता रूप ईश्वर पुरुष रूप जगत हूं- ऐसा जानता हुआ तू ईश्वर है और

स्वप्न, प्रातीतिक विश्व, दर असल हुआ नहीं हैं, मेरा विवर्त है, या, मैं स्वप्न काल में और स्वप्न काल के पश्चात् भी ज्यों का त्यों सुषुप्तिवत् हूं, ऐसा जानता हुआ (अनुभव से) तू ब्रह्म रूप है—

ॐ ॐ ॐ

तूही तेरा राम

जिज्ञासू—भला मैं राम कैसे हो सक्ता हूं? राम तो सर्व शक्तिवान है, आनन्द रूप है और मरता जीता नहीं है और मैं तो एक चींटी भी नहीं बना सक्ता, दुखी हो जाता हूं और मरने जन्मने वाला हूं मैं तो अल्पज्ञ जीव हूं—

ज्ञानी—प्यारे तू अल्पज्ञ शक्ति वाला नहीं है तू सर्व शक्ति मान है तू चींटी तो क्या ब्रह्मांड को रचने की शक्ति रखता है और यह अनन्त ब्रह्मांड तेरी ही रचना है. और तू आनन्द रूप है, चंचल मन बुद्धि रूप जल में उन की चंचलता के कारण तेरा स्वरूप दुख रूप प्रतीत होता होगा सो तुझे क्या? मैले और उछलते हुवे जल में सूर्य का प्रतिबिंब विपरीत दीखे तो क्या सूर्य विपर्यय भाव को प्राप्त हो जाता है? और तू मरता भी कभी नहीं है प्यारे विचार कि यदि तू अब तक एक दफे भी मरगया होता तो अब कहां से होता और क्या तू ने अपनी मृत्यु यानी नाश देखा है?

और तू ने कहा कि मैं अल्पज्ञ हूं सो क्या हुआ, जो सर्वज्ञ होता है वह अल्पज्ञ भी जुरूर होता है जो १००तक गिनना जानता है वह अल्पभी यानी १० तक का गिनना भी जानता है—

जिज्ञासू—मैं ब्रह्मांड कैसे बना सक्ता हूं? और यह अनंत ब्रह्मांड मेरी रचना कैसे है ? यह असंभव बात है—

ज्ञानी—स्वप्न सृष्टि तेरी रचना है या नहीं ? तैसे ही यह भी स्वप्न है, जैसे कली का फूल हो जाता है और शाम को बंद होकर फिर कली रह जाती है तैसे तुझ चिन्मात्र कली से स्वप्न सृष्टि पैदा होकर जागने पर फिर तू अकेला कली रूप रह जाता है और स्वप्न में जैसे स्वप्न सृष्टि का कर्त्ता दूसरे ईश्वर को कल्पता है और आप को तुच्छ जीव मानता है तैसे ही यह भी सृष्टि तेरा स्वप्न है सूर्यादि तेरे रचे हैं परंतु तू आप को तुच्छ अल्पज्ञ जीव मानता है— अब मौका है जाग पड़, स्वप्न से जाग कर तो स्वप्न सृष्टि को मिथ्या सब ही कहा करते हैं लेकिन स्वप्न काल में उस को जागृत और सत्य मानते हैं यदि उसी समय मिथ्या मानलें तो स्वप्न में होते मिथ्या सुख दुख में न फँसें, जान ले इस सब को मिथ्या और छोड़ राग द्वेष—

जिज्ञासू—स्वप्न सृष्टि तो वैसे ही यहां के संस्कारों से दीखती है और यह सृष्टि तो सत्य, कर्म जन्य है—

ज्ञानी—अगर स्वप्न के संस्कारों से यह सृष्टि दीखतीहो तो ? इस के लिये क्या दलील दोगे, और तुम ने कहा कि यह सृष्टि कर्म जन्य है सो यह तुम कैसे कह सक्ते हो कि 'कर्म

जन्य है' हां यह कहलो कि कर्म जन्य भासती है, सो कुछ बात नहीं- स्वप्न में स्वप्न के राजा और भिखारी के भी शुभ अशुभ कर्म स्वप्न सृष्टि से पूर्व में करे हुए कल्पना कर लेहो- तो क्या स्वप्न से पहिले उनके शुभाशुभ कर्मथे ? जिज्ञासु—तो क्या शुभाशुभ कर्मों बिनाही जन्म होजाता है! तो कोई सुखी कोई दुखी क्यों होते हैं ! ज्ञानी — जन्म ही नहीं है वास्तव में तो शुभाशुभ कर्म कैसे ! स्वप्नके पुरुष ही नहीं है तो उनके कर्म कैसे ! (जिज्ञासू) स्वप्न तो थोड़ी देर को होता है और नित नया होताहै यह जागृत थोड़ी देर की नहीं है देखो यह पृथ्वीराज के समय की कीली है (ज्ञानी) क्या स्वप्न में तुमको स्वप्न जगत अल्प काल स्थाई भासता है और क्या उससमय जानते हो कि नित नया होता है और यह स्वप्न है प्यारे जबतक स्वप्न और जागृत में फ़र्क़ न बताओगे तब तक तुम को मानना पड़ेगा कि स्वप्नवत् यह ब्रह्मांड भी तुम ने ही रचा है और तुम इस के ईश्वर-हो श्रुति कहती है कि ईश्वर ने सृष्टि रच कर जीवरूप से (अल्पज्ञता पूर्वक) आप ही प्रवेश किया सो तुम स्वप्न सृष्टि पैदा करके जीव रूप से अल्पज्ञ बनकर आप ही प्रवेश करते हो- ऐसा ही यहां है- शरीरकी चहार दीवारी से हट कर देख और जानले तुही तेरा राम है ॥ ॐ

यदि सब जगत एक, आत्म रूप ही है

तो जगत में विलक्षणता क्यों ?

भगवन ! जैसे एक ही रस से (जलसे) वृक्ष के पत्ते, फल,

फूल, डाली, जड़ आदि परस्पर विलक्षण सूरत और गुणों वाले होते हैं तैसे, जैसे एक ही समुद्र में विलक्षण सूरत वाले तरंग चक्र बुलबुले फैन होते हैं जल और फैन में गुण भेद होता है तैसे. जैसे एक ही वीर्य से हाड़, चाम, लोहू बाल होते हैं और इन्द्रियां पृथक २ स्वभाव और रुचि वाली होती हैं तैसे, और बहुत क्या, जैसे एक ही आप स्वप्न में नाना प्रकार के (प्रातीतिक) रूप धार लेते हो [कहीं तमोगुणी सूरत व स्वभाव (सर्पादि), कहीं रजोगुणी (मनुष्य), कहीं सतोगुणी (देवता), कहीं चलते फिरते चेतनवत् और कहीं पत्थर मिट्टी जडवत्] तैसे, जैसे एक मणी में नाना प्रकार के रंग भासते हैं तैसे, जैसे एक ही सूर्य में विचित्र इन्द्र धनुप प्रतीत होता है तैसे एक ही आत्मा (परमात्मा) में नाना प्रकार की सृष्टि, सूर्य. चन्द्रमा, तारे, और पर्वतों सहित भासती है इसमें क्या आश्चर्य है परन्तु जैसे तरंग फैन बुलबुला चक्ररूप भासने पर भी समुद्र ज्यों का त्यों समुद्र भाव में स्थित् रहता है वास्तव में जल ही है तरंग भी जल, बुलबुला और फेन चक्र सब ही जल हैं तैसे भगवन ! आप महान् विभुआत्मा में स्वप्न की तरह यह जाग्रत जगत नाना प्रकार का भासता है स्वप्नमें जैसे स्वप्न सृष्टि स्वप्न द्रष्टा ही का विवर्त्त है तैसे ही इस ही सृष्टि में भी जानो, सूर्य भी आपही हो और चन्द्रमा तारे समुद्र पर्वतादि भी आप ही हो—जैसे आप अपने को एक शरीर रूप मानते हुए भी, उस एक शरीर में नानाप्रकार की विलक्षणता देखते हुवे भी अपने को नाना नहीं जानते तैसे ही समष्टि सृष्टि में भी आप अपने स्वरूप को नाना

कहां है ? गर्जना और नथने फुलाना कहां रगगया ? विद्वत्ता का घमन्ड किधर गया ? अब आप ही कहते हो कि वह सब मिथ्या था—लेकिन अब वैसे ही यहां भास होरहा है और आप के सिर पर अविचार रूपी प्रेत फिर आ चढ़ा है और जैसे प्रेत के आवेश वाला मनुष्य बोलता है तैसे स्वप्न की भांति फिर गर्जने लगे हो—प्यारे ! सच्चिदानन्द कहता है कि इस नाना प्रकार के रंग रूप की तर्फ़ मत जाओ यह सब तुम एक में ही मिथ्या भास रहा है जो इस विचित्र नाटक का अधिष्ठान तुमारा स्वरूप है, जिसमें मैं—तू और यह जगत तरंगों की तरह भासते हैं उसमें स्थित हो—प्रियतम् आत्मन! यह इस समय का भी कहना सुनना आरोपित ही है ॐ ॐ ॐ

बृत्ति ही संसार है

जैसे सूर्य से किरणें निकलती दीखती हैं तैसे आत्म रूपी सूर्य से बृत्ति रूपी किरणें निकल रहीं हैं सूर्य की किरणों में जैसे नाना प्रकार के रंग नज़र आते हैं तैसे तुझ आत्म चेतन की किरणों ही के रंग तेरा ही प्रकाश- तेरा चमत्कार नाना रूप जगत है, तू अपने से भिन्न समझ कर- द्वैत को अपने सिर पर मत खड़ा कर- अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मत मार- सूर्य में से जो नाना प्रकार के रंगों वाली किरणें निकलती दीखती हैं वे वास्तव में सूर्य में से निकलती नहीं है- कोई चीज़ सूरज से बाहर

नहीं आती. सूरज की ताल इतना मुद्दत से किरणों निकलने की वजह से कम नहीं हुई है, मणि के चारों ओर मणि का चमत्कार नज़र आता है वह मणि से बाहर नहीं निकला है, वहां का वहीं दीखता है, तैसे हे चेतन देव, हे छुपे हुवे मदारी–मायाधीश तुझ आत्म रूपी सूर्य के सूर्य चेतनरूप से किरणों की तरह वृत्तियां निकलती हुई सी भासती हैं और वेही विचित्र रंग वाला संसार बनी हुई हैं और सूर्य की किरणें यदि अलग होतीं, सूर्य से बाहर निकलतीं, सूर्य देश से पृथक देश में स्थित होतीं तो २ सूर्य और किरणों में भेद भी होता, परंतु यहां वह बात ही नहीं, इस वास्ते सूर्य ही जो वास्तव में प्रकाश मात्र, सब रंगों से पृथक, सब रंगों के अभाव वाला, जिस में प्रकाश के सिवाय अन्य वस्तु का अत्यंताभाव है, तुम को नाना प्रकार के रंगों से शोभायमान किरणों सहित दीखता है, तात्पर्य कि उस में कोई रंग नहीं, बेरंग, प्रकाश मात्र है और सब रंग भी उसी के हैं तैसे ही यह समस्त वृत्ति रूप जगत, हे भोले महेश तेरा ही प्रकाश है तुझ से पृथक करके उस की सत्ता नहीं है तुम ही जगत हो, सूर्य ही किरणें हैं, अब कहो कि आत्मा में जगत् कहां है? और है भी उसी में, सूर्य की किरणों की नाईं, अब यह जगत निवृत्त क्या हो? हुआ हो तो निवृत्त भी हो, जैसे सूर्य से किरणें स्वभाविक ही निकलती हुई दीखती हैं, तैसे आत्मा रूपी सूर्य में से जगत् रूपी किरणें स्वभाविक ही निकलती सी दीखती हैं सो दावा, सर्ववत् आत्म देव की क्या हानि है? तहां भाष्यकार स्वामी कहते हैं–

सन्तु विकाराः प्रकृते र्दशधा शतधा सहस्रधा वापि,
किं मेसंग चितस्तैर्न घनः कचिदम्बरं स्पृशति,
ॐ ॐ ॐ

कुछ लेना न देना, लेना एक न देना दो

न निरोधो न चोत्पत्तिर्नबन्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तः इत्येषः परमार्थता ॥ अ० शंकराचार्य

आकाश वाणीः—

अहा हा—बलिहारी २ धन्य हूं मैं (आत्मदेव-महादेव) और धन्य है मुझ से अभिन्न मेरी माया शक्ति, पार्वती, *स्पष्ट, स्पष्ट से भी स्पष्ट तौर पर मालूम होता है कि एक (अरे एक भी कहां..........खैर) एक, ज्योति स्वरूप अपने महिमा में (आपे में ही) ज्यों का त्यों स्थित है एक रस, निर्विकार। न सृष्टि पैदा हुई है न नाश होती है, न बन्ध है न मुक्ति का सिद्ध करने वाला है न मुमुक्षु कोई है न कोई मुक्त ही है, आत्म देव रूपी सूर्य की किरणें (मन) में नाना प्रकार के रंग रूप सृष्टि अन-हुई भासती है, बलिहारी मेरी माया [मेरे अद्भुत प्रकाश] को, जैसे अग्नि में ऊष्णता स्वाभाविक होती है तैसे आत्मा रूपी सूर्य में प्रकाश (माया-शक्ति) स्वाभाविक है जैसे सूर्य के प्रकाश में नाना प्रकार के रंग स्वाभाविक [अन-हुए भी]

दीखते ही हैं तैसे मुझ आत्म रूपी सूर्य का प्रकाश (माया) नाना प्रकार का जगत रूप होकर स्वाभाविक (अनहुआही) दीखता है यदि कोई सूर्य की किरणों के रंगों की उत्पत्ति, सृष्टि, और उनका कारण पूछे तो कैसा आश्चर्य है तैसे जगत का कर्त्ता, कारण, हेतु आदिका विचार बुद्धिमान नहीं करते- जो दृश्यादृश्य जगत है वह माया का कार्य है- नहीं २ कार्य भी नहीं (सूर्य के प्रकाश में रंग दीखते हैं- वे रंग प्रकाश का कार्य नहीं है- प्रकाश ही हैं और ज्यादः विचारो तो सूर्य ही हैं- कारण कि सूर्य और प्रकाश अभिन्न हैं) माया हीहै शंकर भगवान कहते हैं' किमिदं किमस्य रूपंकथमेतद भूदमुष्य को हेतुः। इति न कदापि विचिन्त्यं-चिन्त्यं मायेति धीमता विश्वम्' और माया और ब्रह्मात्मा, सूर्य और प्रकाश-वत् अभिन्न हैं- बस फिर क्या है- यह दृश्यादृश्य जगत ब्रह्म ही है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' ब्रह्मके सिवाय कुछ नहीं अब कहिये बद्ध कौन और मुमुक्षु व मुक्त कौन ? बद्ध और मुक्त यह बालकों के खेल के शब्द हैं—यदि बद्ध हो तो मुक्त होना और मुक्त हो तो मुक्त होना (मुक्त का क्या मुक्त?) असंभव है— यदि सृष्टि माया मात्र अनहुई — स्वप्नवत् इन्द्रधनुषवत् देखने मात्र है (और है ही इस्तरह) तो बन्धन और मुक्ति क्या सत्य हो सक्ती हैं ? कदापि नहीं—हे उपदेष्टाओ-हे व्याख्यान दाताओ—क्या तुमने खरेखर आत्मा से भिन्न अनात्म को स्वप्नवत् नमूदी जाना है ? तो प्यारे इतनी धाम धूम का कारण ? यदि सर्वात्म दृष्टि है तो सर्व को आत्म जैसा ब्रह्मरूप देखो—सुषुप्त पुरुष जैसे मस्त पड़ा २ बेखबरी में

वर्षाता है तैसे सच्चिदानंद हर वक्त मस्ती में मस्त (आपे में मग्न) पड़ा है बेहोशी में यह शब्द बर्षाने की तरह निकल रहे हैं—जैसे अग्नि से चिंगारे निकलते हैं और अग्नि को होश (ख्याल) नहीं होता कि क्या होता है तैसे।'नहीं कुछ काम करने का-नहीं कुछ सोच मरने का- नहीं है हिर्स हशमत की तो फिर होशो हुश्यारी क्या ?' ॥ आहा जैसे सूर्य से गर्मी वह निकलती है और नाना प्रकारके रूपांतरको प्राप्त होती है तैसे यह जगत अनंत ब्रह्मांड मेरी ही दमक तो है My manifestation ॐ मस्ती में बेखबरी में,तृषी की उद्गारें

ॐ ॐ ॐ

शिवोहम्—शिवोहम्

अहा हाहा यह दृश्य जो सामने नज़र आता है यह केवल-केवल मेरा निर्विकार आत्मा ही है, मैं अर्द्धाङ्ग शिव हूं- ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है अर्थात् यह मेरी मूर्त्ति मेरी अर्द्धाङ्गी पार्वती शक्ति (फुरना) सहित है—कहीं बेशुमार नाग (मन) मेरे शरीर पर लिपटे हुवे हैं और सब मनों का शिरोमणि (देवता) समष्टि रूप चन्द्रमा मेरे ललाट में शोभायमान है तो कहीं मेरे सर के बाल बाल में मोती पिरोये हुवे हैं कहीं मेरी सवारी में बेशुमार नन्दीगण अर्थात शरीरगण दृष्टि आते हैं तो कहीं बेशुमार आरसियें (जो स्त्री अंगूठे में पहनती हैं) [इन्द्रिय] मेरे बदन का भूषण बनी हुई हैं कहीं मेरे शिर (हिमालय) से श्री गंगाजी की पवित्र धारा पतन होती दीखती है तो कहीं गौरी भगवती का नृत्य (बुद्धि

की फुरना) देखता हूं—

यह समस्त जगत पार्वती जी है और इस को सत्ता स्फूर्ति देने वाला अस्ति,भाति, प्रिय मात्र शिव रूप है, इस तरह यह विश्व, शिव- अर्द्धांग की साक्षात मूर्त्ति है, इस दृश्यमान जगत को मैं ने इस प्रकार धारण किया हुआ है जैसे सूर्य सब प्रकार के रंगों को धारण किये है, आकाश नीलता को धारण किये है, सब रंग सूर्य में हैं और सूर्य प्रकाश मात्र सब रंगों से (वास्तव में) रहित है, आकाश में नीलता दीखती है परंतु दर असल आकाश शून्यता मात्र नीलता से रहित है, तैसे ही यह जगत रूपी आडंबर मुझ शिवतत्व, आत्म देव में [इस तरह है जैसे समुद्र में तरंग] स्वप्नवत् है अर्थात् आकाश की नीलतावत् देखने मात्र ही है, वास्तविक नहीं, मैं इस समय वास्तव में न कुछ लिख रहा हूं न मेरे सामने टेबिल व कलम स्याही आदि हैं मैं ज्यों का त्यों (Normal State) हूं जैसे स्वप्न रूपी दृश्य मुझ में भ्रम होता ही दृष्टि आता है तैसे यह (जागृत) भी स्वप्न रूप ही है, जैसे स्वप्न काल में द्रष्टा, स्वप्न संबंधी दृश्य के संबंध से, दर असल रहित होता है तैसे सच्चिदानन्द इस समय और हर समय ज्यों का त्यों ही है और यह दृश्य-जगत मणि के चमत्कारवत् मेरी गौरी शक्ति (फुरना) का नृत्य है— ॐ ॐ ॐ

सब मन=शेष नाग है-सूर्य चंद्रमा तारे=जुल्फों के मोती, आकाश की नीलता=जुल्फें, वायु=चांदी, शरीर=नन्दीगण, सुख दुख=मटकना या ठमका चाल, हस्त=पंखे या चंवर

ॐ

सर्वात्म भाव

प्यारे ज़रा ध्यान से सुन, तुझे एक खुशखबरी सुनाता हूं—अरे तुझे चक्रवर्ती राजा बनाता हूं—तमाम पृथ्वी नहीं २, अनंत ब्रह्माण्डों का मालिक बनाता हूं

जब तू स्वप्न सृष्टि का अनुभव करता है तो दूसरा आदमी जो तेरे पास बैठा होता है उसको तेरी सृष्टि नहीं दीखती इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह सृष्टि तेरे ही अंतर में है या यों मान कि उस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तेरे ही अंतर होती है—अगर उसका दारमदार तुझ पर न होवे तो दूसरे को भी भासे, और तुझ पर उसका दारमदार न होवे तो तेरे ही जागने पर उसका प्रलय न होजावे—जब तू स्वप्न सृष्टि रचता है तब इस सृष्टि में से कुछ भी नहीं लेजाता है सिर्फ़ तेरे संकल्प मात्र से रची जाती है—या यों भी कहलो कि वहां सृष्टि दृष्टि कुछ भी नहीं है तूही अकेला है अर्थात् स्वप्न सृष्टि तुझ स्वप्न द्रष्टा से प्रथक नहीं है वहां द्रष्टा–दर्शन–द्रश्य रूप त्रिपुटी तूही आपको देखता है यानी तूही द्दश्य है और द्रष्टा है (अगर वहां तेरे से भिन्न कोई और तुझको प्रतीत होता हो तो कह) स्वप्न की सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता, तूही उस सृष्टिका मालिक ब्रह्मा है और तूही विष्णु है क्योंकि वह सृष्टि तुझ में ही स्थित है

और उस सृष्टि का संहारक शिव भी तूही है-इस से मालूम होता है कि स्वप्न जगत होकर तूही भासता है—स्वप्न सृष्टि का मालिक या ईश्वर तूही है—अब प्यारे जिस्को तू जागृत सृष्टि कहता है उसमें जब तक तू स्वप्न से किसी अंश में भी बिलक्षणता न बतावे तब तक तुझको क्या हक है यह कहने का कि इस सृष्टि का उत्पत्ति स्थित, और प्रलय का आधार किसी दूसरे पर है ? तूही प्राणी बना हुवा है और तूही सब प्राणियों-जीवों का प्राण है अर्थात् तेरी सत्ता से ही सब हैं-जिस्को तू अपने से प्रथक समझता है वह दरअसल प्रथक नहीं है-स्वप्न में एसा प्रथकत्व भासता है परन्तु होश में आकर मालूम होजाता है कि वहां प्रथकत्व कूछ नहीं था तूही तू था-तूही घोड़ा था तूही पहाड़ व नदी था और तुही सूर्य चन्द्रमा आकाश था-ऐसे ही यहां जान-यह भी तू स्वप्न देख रहा है इस स्वप्न ही में मैं तुझको जगाता हूं—जागजा जाग जा और अपनेको सबका मालिक समझ-अपनेको सर्व रूप समझले—यह तू जानता है कि जिसको सुषुप्ति कहता है उस समय तू अकेला ही था-क्या उस समय तुझे कोई अपने से भिन्न ईश्वर भासता था ? प्यारे सृष्टि जीव ईश्वर तीनों आपेक्षिक हैं जिस समय तुझ आत्मरूपी समुद्र में तरंग उठती हैं तब सृष्टि जीव ईश्वर तरंग की तरह भासने लगते हैं और फिर जैसे समुद्र में तरंग लय होजाती हैं तैसे तुझ आत्मरूपी महान् समुद्र में जीव और ईश्वर अपनी सृष्टि सहित लय होजाते हैं—वही बात है—मैंने माना दहर को हक़ ने किया पैदा वले— मैं वो खालिक़ हूं मेरी कुनसे खुदा पैदा हुआ। स्वप्न सृष्टि और

जागृत सृष्टि में भेद मालूम होता हो तो धीरज से विचार कि जागृत में कौनसी बात है जो स्वप्न में होना असंभव है- जिस मजबूती से तू इस जगत को सत्य और स्वप्न को मिथ्या कह रहा है क्या स्वप्न में तेरा ऐसा ही कहना असंभव है ? विचार- स्वप्न की क्षणिक सृष्टि पुरानी मालूम होती है तैसे ही यहां यह सृष्टि भी वास्तव में क्षणिक ही है-और बहुत क्या स्वप्न में तू स्वप्न को जागृत कहता है तैसे ही यहां भी स्वप्न को जागृत कह रहा है-प्यारे इसको भी स्वप्न जान और स्वप्न सृष्टिवत् आपको सबका अधिष्ठान-और सर्व रूप समझ, अधिष्ठान और अध्यस्त वास्तव में अभिन्न ही होते हैं ॐ ॐ ॐ

स्वप्न जागृत की तुल्यता

शंका— भला स्वप्न और जागृत दोनों तुल्य कैसे हो सक्ते हैं- दोनों अवस्थाओं में निम्न लिखित अनिवार्य भेद स्पष्ट दीखता है:— स्वप्न थोड़ी देर के लिये होता है और जागृत चिरस्थाई है (१) स्वप्न रोज २ नया होता है और जागृत एक ही चला आता है (२) स्वप्न से जाग कर हमको स्वप्न की याद रहती है और जागृत से स्वप्न में जाते हैं तो जागृत को स्वप्नवत् नहीं याद करते [३] स्वप्न का कारण जागृत के संस्कार हैं और जागृत का कारण पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म हैं (४) अब तक हमने सैकड़ों- हजारों देखे होंगे उनमें से बहुतों की स्मृति भी है और : एक-वही की वही है (५) अगर जागृत के कारण

शुभाशुभ पूर्व कृत कर्म न मानें, तो कर्मों का फल लोप होने का प्रसंग बनेगा (६) पूर्व कृत शुभाशुभ कर्मों का फल जागृत है और जागृदावस्था में देखे; सुने, मनन किये विषय अथवा उनका रूपान्तर स्वप्न होकर दीखता है- यदि ऐसा न माना जाय तो सृष्टि का कारण ही न मिलेगा (७) ईश्वर रचित सृष्टि को इस प्रकार मिथ्या स्वप्नवत् कहने में और मानने में ईश्वर के गुणों को यानी उसके उपकार को न मान कर कृतघ्नता दोष की प्राप्ति होती है (८) जागृत और स्वप्न दो नाम हैं इस से भी मालूम होता है कि अवश्य भेद है (९)

समाधान–जागृत भी स्वप्नवत् थोड़ी देर के लिये है– जैसे अल्पकाल स्थाई स्वप्न, उस समय चिरकाल स्थाई भासता है तैसे जागृत भी अल्पस्थाई है परन्तु अपने काल में चिरकाल स्थाई भासता है, अल्प भी भेद नहीं (१) स्वप्न काल में स्वप्न को जागृत मान कर उस को भी हमेशः का स्थित जानते हो, इस लिये दोनों तुल्य हैं (२) जैसे तुम अब कहते और मानते हो कि जब हम इस जागृत से स्वप्न में जायंगे तो हम को इस की याद नहीं रहेगी तैसे स्वप्न काल में स्वप्न को जागृत मान कर वहां भी यही ख्याल करते हो, कल्पना करो कि तुम रात्रि को दश बजे मित्रों से वार्त्तालाप करते हुवे निद्रावश हुवे, उसी समय आप को स्वप्न आया कि प्रातःकाल के सात बजे हैं और तुम स्नान कर रहे हो, उसी समय एक पुरुष आकर तुम से प्रश्न करता है कि शास्त्री जी आप कब आये भावनगर से ? और स्टीमर

जागृत सृष्टि में भेद मालूम होता हो तो धीरज से विचार कि जागृत में कौनसी बात है जो स्वप्न में होना असंभव है- जिस मज़बूती से तू इस जगत को सत्य और स्वप्न को मिथ्या कह रहा है क्या स्वप्न में तेरा ऐसा ही कहना असंभव है ? विचार- स्वप्न की क्षणिक सृष्टि पुरानी मालूम होती है तैसे ही यहां यह सृष्टि भी वास्तव में क्षणिक ही है-और बहुत क्या स्वप्न में तू स्वप्न को जागृत कहता है तैसे ही यहां भी स्वप्न को जागृत कह रहा है-प्यारे इसको भी स्वप्न जान और स्वप्न सृष्टिवत् आपको सबका अधिष्ठान-और सर्व रूप समझ, अधिष्ठान और अध्यस्त वास्तव में अभिन्न ही होते हैं ॐ ॐ ॐ

स्वप्न जागृत की तुल्यता

शंका— भला स्वप्न और जागृत दोनों तुल्य कैसे हो सक्ते हैं- दोनों अवस्थाओं में निम्न लिखित अनिवार्य भेद स्पष्ट दीखता है:— स्वप्न थोड़ी देर के लिये होता है और जागृत चिरस्थाई है (१) स्वप्न रोज २ नया होता है और जागृत एक ही चला आता है (२) स्वप्न से जाग कर हमको स्वप्न की याद रहती है और जागृत से स्वप्न में जाते हैं तो जागृत को स्वप्नवत् नहीं याद करते [३] स्वप्न का कारण जागृत के संस्कार हैं और जागृत का कारण पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म हैं (४) अब तक हमने सैकड़ों हज़ारों स्वप्न देखे होंगे उनमें से बहुतों की स्मृति भी है और जागृत अवस्था एक-वही की वही है (५) अगर जागृतके कारण

स्वप्न में पूर्व अननुभूत स्वप्न की मिथ्या स्मृति होती है और तुम समझते हो कि हमको अनुभूत की स्मृति होरही है-इसलिये जैसे स्वप्न में सब पूर्वकी स्मृति भ्रम मात्र है तैसे जागृत में पूर्व स्वप्नादि की स्मृति भ्रम मात्र है—जागृत स्वप्न में रंचक भी भेद नहीं (३) जागृत के कारण पूर्व शुभाशुभ कर्म तुम को उसी प्रकार भासते हैं जैसे स्वप्न सृष्टि में धनी और दरिद्री के पूर्वकृत शुभ और अशुभ कर्मों की मिथ्या कल्पना स्वप्न काल में तू करता है-स्वप्न में राजा को देख कर विचारता है कि इस राजा ने पूर्व जन्म में यज्ञ किया होगा और कुष्टी बालक को देखकर विचारता है कि इस कुष्टी ने पूर्व जन्ममें अवश्य कोई दुष्टकर्म किया है—प्यारे सच कह कि स्वप्नके जीवों के पूर्वजन्म हैं क्या? उनके जन्मकी तो वार्त्ता ही क्या करनी है—जागकर तू उनको ही असत्य कहदेता है वे खुद ही नहीं तो उनके पूर्वकर्म कहां?वंध्या पुत्र ही नहीं तो उसके कर्म कहां?यह माया महारानी-तेरी पटरानी का अद्भुत तमाशा है कि स्वप्न सृष्टिके विषय में तू भली प्रकार जानता है और कह सक्ता है—कि वहांका दृश्य मिथ्या-मिथ्या बिल्कुल मिथ्या था न वहां (स्वप्नमें) धनी था न दरिद्री था, न राजा था न कुष्टी बालक था—सिर्फ़ तू ही तू था—न आकाश आदि पंचभूत थे न भौतिक पदार्थ ही थे—तिस पर भी अपनी अर्द्धांगी (माया) के धोखे में ऐसा आजाता है कि अन हुई सृष्टि को सत्य मानलेता है और पूर्वोत्तर की कल्पना करके राग द्वेष को प्राप्त होकर सुखी दुखी होता है—प्यारे तू जानता है (जाग

के रास्ते आये या आग गाड़ी के रास्ते आये? स्टीमर कल किस समय भावनगर से चला था ? जल्दी स्नानादि करलो और फिर सभा में चलेंगे—स्वप्न ही में उस की वार्त्ता सुन कर कहते हो, मैं इसी वक्त भावनगर से आया हूं सिर्फ एक ही घंटा हुवा है, और मित्र आग गाड़ी के रास्ते आया हूं क्या कहूं जिस वक्त कल रात्रि को ८ बजे मैं भावनगर स्टेशन पर आया तो स्टेशन पर बड़ी भारी भीड़ थी—मेरा कुछ सामान और ज्येष्ट पुत्र तो वहीं रहगये—अब ६ की गाड़ी में आते होंगे—मुझे स्टेशन पर जाना है इस लिये सभा में आज न आसकूंगा और मित्र ! रात्रि भर जागा हूं सिर्फ एक घन्टे आंख लगी थी इसवास्ते आज तो निद्रा करूंगा-और बड़ी सभा भी तो कल होगी देखो मेरी जेब में तार है उस को वांचो—मेरे पास कल दुपहर को १ बजे यह निमंत्रण तार पहुँचा था—थोड़ी देर पीछे ज्येष्ट पुत्र असबाब सहित आता दीखता है, प्यारे कहो कि स्वप्न में इस प्रकार बातचीत होना असंभव है क्या ? यदि संभव है तो कहो कि जितनी वार्त्ता तुम ने रेल गाड़ी - स्टेशन १ घंटे सोना तार का पहुंचना वगैरः की कहीं वह सत्य थीं या झूट थीं ? और झूठ थीं तो क्या तुम को उस काल में वह मिथ्या प्रतीत होती थीं ? या उन को कहते हुए चित्त में समझते थे कि हम सत्य बोल रहे हैं ? बस सच्चिदानन्द तुमको यही कहता है कि जैसे स्वप्न में तुमको अननुभूत (जिसका अनुभव नहीं हुआ) पदार्थ अनुभूत जैसे भास होकर उनकी मिथ्या स्मृति होती है और याद कर २ के कहते हो तैसे ही तुमको इस जागृत रूप

ख्याल रूपी उपादान से घर फिर पैदा हो गया, पूरी मोग बत्ती सहित नष्ट हुवा था और फिर चोथांइ बत्ती सहित पैदा हुआ, अगर ऐसे नं मानेगा तो स्वप्न सृष्टि का उपादान ख्याल से भिन्न कुछ और मानना पड़ेगा, लेकिन निद्रा रूपी दोष से, नहीं नहीं तेरी पटरानी के जादू से तू ज्यों का त्यों नहीं देखता है सत्य को झूठ और झूठ को सत्य मान लेता है तू नहीं जानता कि तेरी पटरानी माया कैसी शक्ति रखती है ? सुन, सुन वेद कहते हैं कि असंभव को संभव करने में वह निहायत चतुर है 'अघटन घटना पटीयसी माया' और वाजिब भी तो है, कारण कि अर्द्धांगी किसकी है ? प्यारे तेरी ही सत्ता से उसका अस्तित्व है, तू कैसा है ? देश काल वस्तु परिच्छेद से रहित, साक्षी, अजर, अमर, निर्विकार, निरंजन, सर्वाधार, सर्वाधिष्ठान, भला फिर तेरी माया महिमा, लीला, पटरानी ऐसी हो तो क्या आश्चर्य है, और यह न समझना कि नाना प्रकार का विश्व (अहंकार से...: मोक्ष तक) रचकर वह तुझे सताती है, हरे हरे हरे........ नारायण, वह तेरे सामने तुझे हँसाने को नृत्य करती है तेरे सामने तरह तरह के तमाशे करती है कि प्रसन्न हो, और जब देखती है कि तू उल्टा अप्रसन्न होता है या धोखा खाता है तो सब ठाठ को विसर्जन करके (सुषुप्ति) तुझे निश्चय कराती है कि जगत नहीं है ब्रह्मा नहीं है, विष्णु नहीं है, मैं नहीं हूं तू नहीं है, परन्तु मैं तू आदि रूप तरंगों का अधिष्ठान, वाणी से अगम्य, मनसे अगम्य, निर्विकल्प, निरामय, आनंदस्वरूप,

कर) कि स्वप्न जगत का उपादान कारण और निमित्त कारण तेरे ही खयाल हैं और उपादान के नाश होने से कार्य भी नहीं रहता है यह भी मानता है—अब देख स्वप्न में जब तू घरसे नाटक देखने जाता है और नाटक देखने में ऐसा मग्न होजाता है कि घर का ख्याल नष्ट होजाता है—यह भी नहीं खबर (ख्याल) रहती कि घर है या नहीं—अब कह कि जब स्वप्न की कुल सृष्टि का उपादान ख्याल ही है तो ख्याल के नष्ट हुए स्वप्न का घर भी नहीं रहा—लेकिन नाटक देखकर आता है तब फिर घरको देखता है—तो विचार कि वह घर नाटक में जाने से पहले छोड़ा था वही है या नवीन ही तेरे ख्याल रूपी उपादान कारण का कार्य है ? यदि पहला ही है तो उसका उपादान (ख्याल) तो था ही नहीं वह कैसे स्थिर रहा और यदि उसका उपादान ख्याल को न मानेगा तो स्वप्न सृष्टि को खयाली मत मान, सत्य मान ॥ यदि वह घर (जो नाटक से लौटकर देखता है) नया है तो उसको तू उस समय पहला ही घर क्यों समझता है ? लौट कर घरमें देखता है कि साबित मोमबत्ती जलती छोड़ गया था वह चौथाई रह गई, कह कि तीन चौथाई बत्ती कैसे जलगई ? क्यों कि घर भी घरके ख्याल के साथ ही नष्ट हो गया था तो बत्ती भी तो नष्ट होगई होगी, प्यारे स्वप्न तेरा ख्याल है इस में जरा भी शकोशुबा नहीं है, नाटक को गया और घर का ख्याल न रहा तब घर भी नष्ट हुआ था इस में भी संदेह नहीं है, नाटक से लौट कर आया तब तेरे

(७) कृतघ्नता दोप की प्राप्त नहीं होती है अगर सृष्टि को सत्य मानों तो तुमारे ईश्वर पर मुकद्दमा कायम होता है उसने तमोगुण क्यों रचा? कोई जीव सुखी कोई जीव दुखी, यह विषमता क्यों ? अगर पूर्वकृत कर्मों का फल सुख दुख मानों तो पूर्व जन्म में अंतःकरण सतोगुणी क्यों न रचा—परमात्मा तो सर्व शक्तिमान है? अगर कहो कि ठेठ पूर्व का जन्म कह नहीं सक्ते, सृष्टि अनादि है हमेशा से योंही चली आती है तो यह प्रश्न ही गड़बड़ में पड़ जायगा और सृष्टिका-कर्त्ता कोई न ठहरेगा—जन्म कर्म इस तरह है जैसे—वृक्ष और बीज—परस्पर कारण कार्य मानने से समाधान न होसकेगा, हां दोनों का कारण (माया) अज्ञान मानलो तो ठीक है और बराबर पूछते जाने पर यह ज़रूर कहना पड़ेगा कि 'मालूम नहीं' इसी को वेदान्त अज्ञान कहता है और वास्तव में सृष्टि हो तो कारण भी ज़रूर मिले-सृष्टि है ही नहीं तो कारण कहां मिले (८) 'जागृत और स्वप्न' इस प्रकार दो नामों से जागृत स्वप्न का भेद कायम करते हो तो नहीं होसक्ता जिस्को तुम अब स्वप्न कहते हो उसी को किसी वक्त (स्वप्न काल में) जागृत कहते थे—अब कहो तुम खुद ही एक चीज़ को दो नामों से कहते हो एक ही अवस्था के दो नाम स्वप्न और जागृत तुम खुद रखते हो क्या तुमारे दो नाम रखने से एक ही चीज़ दो होसक्ती हैं?

अक्सर कहा जाता है कि स्वप्न जागृत मिथ्यात्व में गो यकसाँ हैं परंतु अवस्था भेद है यानी दोनों सृष्टियों में रहना

तेरा वास्तव स्वरूप है ऐसा :दिखाकर वह तुझ से अभिन्न रूप हो कर स्थित होती है, तेरे साथ ऐसे हो जाती है जैसे पुरुष के साथ उसकी स्त्री मिल जावे, लिपट जावे, यह मालूम हो कि जानों एक ही हैं, नहीं नहीं' 'एक, दो' यह तो उसके तमाशे करते समय के शब्द हैं, 'एक और दो' भी उस वक्त नहीं दाख़िल हो सक्ते, फिर हे शिव ! तेरी फ़ुरना रूपी पार्वती जी पैदा होकर तेरी प्रसन्नतार्थ अपना नृत्य (मुजरा) करने लगती है—इस वास्ते यह जागृत जगत कारण बिना अकारण ही है, झूंठा, प्रतीति मात्र, ऐंद्रजालिक, देखने मात्र, तू अपनी प्रिया के मज़ाक को सत्य न जान और हे भोधू-भोले महेश. सुषुप्ति में तू सब का अभाव भी देखलेता है और फिर भी वही राजापन (बेवकूफ़ी) ? (४) जैसे सैंकड़ों हज़ारों अनगिनत स्वप्न देखे हैं और रोज़ रोज़ नया ही देखता है परंतु देखते समय यह नहीं जानता कि यह आज नवीन ठाठ देख रहा हूं बल्कि पुराना जानता है तैसे ही यह जागृत रूपी स्वप्न भी पुराना नहीं है, नवीन है—तुझे स्वप्न की नांई पुराना भासता है(५)अगर कर्मों के फल लोप होने का प्रसंग आवेगा तो क्या हुआ ? वास्तव में कर्म और उनका फल स्वप्न की तरह अनहुए दीख रहे हैं-कृष्ण परमात्मा खुद कहते हैं कि ' न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु, न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥ (६)सृष्टि का कारण है ही नहीं—सृष्टि ही अनहुई भासती है-यह खुद ही नहीं तो उस का कारण कहां ? रज्जु में सर्प ही वास्तव में नहीं है तो उस रज्जु के सर्प की मा सर्पिणी कहां !

थीं-यहां आप ज़रा भी ऐसी बात देखलो तो बरसों ज़िकर पढ़े करते रहते हो-अखबार नवीस ले उड़ते हैं-लेकिन स्वप्न में ऐसे महा आश्चर्य को भी मामूली फिहरिस्त में रखदेते हो-इस से माळूम हुआ कि जिस वक्त वारदात ऐसे आश्चर्य की होती है उस वक्त नहीं माळूम होती-पस जागृत में भी अगर स्वप्नवत् देश-काल, वस्तु में यकायक तबदीली (Sudden Change) होती हो तो आप-को क्या माळूम ? और फिर भी आप जागृत और स्वप्न में दृढ़ता और अदृढ़ता का भेद स्थापन करके इस वक्त की सृष्टि को जागृत कहो और मानो कि यह स्वप्न नहीं है दृढ़ होने के कारण तो सच्चिदानन्द कहकहा लगाने के सिवाय कुछ न कहैगा, उस में तुमारी गलती नहीं है स्वप्न में (जिस्को आप अदृढ़ सृष्टि कहते हैं) आप स्वप्न को स्वप्न नहीं कहते हो उसको उस समय जागृत कहते हो—दृढ़ कहते हो और जाग कर अपने बयान [Statement] को बदल डालते हो यह सब आप की अर्द्धांगी की दिल्लगी है और आप उसके चकमे में आजाते हो ॐ ॐ ॐ

नाम रूप में दिल मत लगाओ

हे विश्वनाथ, हे प्रियतम आत्मन् ? जीव-ईश्वर और विश्व तुझ में बिल्कुल, सचमुच इसी प्रकार हैं जैसे गंगा किनारे रेती के मैदान में जल का प्रवाह भासे जलका प्रवाह नहीं है रेतीही रेती है- प्यारे तू चाहे जैसा दीखो- पर्वत नदी आदि के पर्दे में तू ऐसे छुपरहा है

और अदृढ़ता का भेद है:-स्वप्न अदृढ रूप है कारण कि वहां देश, काल और वस्तु क्षण २ में बदलते दिखाई देते हैं मसलन. देखते २ दिल्ली का आगरा, दुपहर का शाम और आदमी का जहाज़ होजाता है और जागृत दृढ रूप है उस में ऐसा नहीं होता है-इस मौके पर सच्चिदानन्द बड़े प्यार से पूछता है-प्यारे धैर्य के साथ विचार कर कहो कि स्वप्न में यह क्षणिक तबदीली आश्चर्य रूप [Extra ordinary] क्या आप स्वप्न ही में नोट करते हैं वा ऐसा है कि स्वप्न में आप उसको बिलकुल मामूली समझते हैं और जागकर उसे (स्वप्न में मामूली समझी हुई वारदात) आश्चर्य रूप मानते हो-हां माना कि स्वप्न में दिल्ली का आगरा, सुबू की शाम-दवात का हाथी होता दीखता है लेकिन इस महान आश्चर्य रूप तबदीली को क्या आप उस काल में (स्वप्न में) आश्चर्य रूप मान कर [जैसे महान आश्चर्य रूप वारदात को यहां जागृत में एक दूसरे से कहते हैं] किसी से अपने आश्चर्य को ज़ाहर करते हो या अपने मन में भी उस वक्त (स्वप्न ही में] उसकी आश्चर्यता पर विस्मय को देखते हो ? हर्गिज़ नहीं, हां जाग कर-और उस को स्मरण करके ज़रुर कहते हो कि फलां आश्चर्यमय वारदात हमने स्वप्न में देखी थी-तात्पर्य यह कि आपने स्वप्न की आश्चर्य रूप वारदात को जागृत में आकर आश्चर्य रूप माना, स्वप्न में तो वे सब ही वारदातें आप की मामूली फ़िहरिस्त (Ordinary-Common list) ही में

थीं-यहां आप ज़रा भी ऐसी बात देखलो तो यसों ज़िकर
पड़े करते रहते हो-अखबार नवीस ले उड़ते हैं-लेकिन
स्वप्न में ऐसे महा आश्चर्य को भी मामूली फिहरिस्त में
रखदेते हो-इस से मालूम हुआ कि जिस वक्त वारदात
ऐसे आश्चर्य की होती है उस वक्त नहीं मालूम होती-जब
जागृत में भी अगर स्वप्नवत् देश-काल, वस्तु में यकायक
तबदीली (Sudden Change) होती हो तो आश्चर्य
क्या मालूम ? और फिर भी आप जागृत और स्वप्न
दृढ़ता और अदृढ़ता का भेद स्थापन करके इस दृढ़
सृष्टि को जागृत कहो और मानो कि यह स्वप्न नहीं
दृढ होने के कारण तो सच्चिदानन्द फ़दफ़दा [illegible]
सिवाय कुछ न कहेगा, उस में तुमारी मर्ज़ी नहीं है

जैसे तरंगों में जल– भूपण में सुवर्ण और घट में मृत्तिका, तू मुझसे कहां छुपेगा ? बच्चों में यह तेरी आंख मिचौनी का खेल निभ जायगा- सच्चिदानन्द से नहीं पुछ सक्ता है, प्यारे घट को कोई और घट जानों तो भले ही जानों- मैंतो घट को मृत्तिका ही जानता हूँ मुझको घट भूपण तरगांदि नहीं दीखते मुझे तो मिट्टी सुवर्ण जल ही भासता है- मुझको जगत वगत नहीं दीखता मुझको तो आपही आप नज़र आते हैं- अहाहा मौज है वहार है आनंद है जीव, ईश्वर और जगत नमूदी निकले; नमूदी न होते तो समाधि और सुपुप्ति में भी रहते; जब तक नाम और रूप प्रातीतिक पदार्थों में प्रीति है तब तक नाम और रूप का अधिष्ठान कैसे भासे ? नहीं भास सक्ता, अगर कोई पाप इस दुनियाँ में है तो वह यही है कि नाम और रूप को सत्य जान कर उन में दिल लगाना और पाप जितने हैं वे सब इसी एक पाप के बच्चे कच्चे हैं, इस पाप का फल जो दुख है वह कालांतर में नहीं हुआ करता है- इसका फल तो फ़ौरन से भी पहले होता है, नाम और रूप में दिल लगाने से दोनों फ़रीक़ों को दुख भोगना पड़ता है, माया यानी प्रकृति तुमको धोका नहीं देती वल्कि धोके से सावधान करती है और परमेश्वर परायण बनाती है वह यों कि दुनियाँ के जिस पदार्थ से तुम दिल लगाते हो उसी को नष्ठ करदेती है गोया यह जताती है कि यह पदार्थ झूठा था और तुम उसके इस उपकार को न मान कर अपकार ख्याल कर लेते हो, रोते हो और फिर ग़लती करने से बाज़ नहीं आते हो– फिर किसी सांसारिक पदार्थ में दिल व

बर्बाद कर देते हो, वह फिर उस पदार्थ के नाश द्वारा तुमको उपदेश करती है और तुम फिर नहीं मानते हो आप भी दुख भोगते हो और उस चीज़ को भी नाश करते हो-यह घोर पाप है. अगर कोई पुण्य यानी शुभ काम है तो वह यही है-कि नाम रूप में दिल न लगाना और जिस से नाम रूप निकले हैं और निकल कर जिसमें स्थित रहकर जिसमें लय होते हैं उसी में मनको स्वाहा करदेना, इस यज्ञ रूप पुण्य कर्म का फल भी फौरन से पहिले मिलता है और उसके सामने स्वर्ग का फल भी पाजी हो जाता है, चाहे जब चाहे जो, कर देखो सच न निकले तो सच्चिदानन्द के हाथ काट लेना ॐ ॐ ॐ आनन्द

फुरना—जगत्
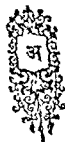
अहा हा वाह वाह अहा हा, आनन्द, मौज, बहार प्यारे क्या कहूं ? कैसे कहूं ? किस से कहूं ? कहना क्या ? सुनना क्या ? न कुछ कहा सुना जा ही रहा है शून्य, बिल्कुल शून्य, परन्तु कैसा शून्य ? अशून्य रूप, आप ही आप कहने सुनने से परे. कैसा जगत् ? कैसा और किसका डर ? मोक्ष अरु बन्ध कैसे ? यह तो फर्ज़ी नाम हैं, आनन्द रूपी महासागर में आनन्द समाता नहीं, छलक छलक कर तरंग रूप को यानी विश्व को धार रहा है, समुद्र की तरंग उसकी मौज (आनंद का ज़हूर ही मौज है) है, नहीं नहीं समुद्र आनन्द मय हुआ

हुआ मज़े के साथ मटकता है, अहाहा, यह जगत् [जन्म मोक्ष पर्यंत] मेरा मटकना ही निकला 'मज़े करता हूं मैं क्या क्या अहाहा हा ओहो हो हो॥ और लो, जैसे होली में आदमी नाना प्रकार की मुख की आकृति बना बना कर मटकता है, कहीं किसी अन्दाज़ से और कहीं किसी धुन में, तैसे ही, तैसे ही, बिल कुल, तैसे ही, मैं तरह तरह की आकृति बना बना कर [झूंठ मूठ, वैसे ही. प्रतीति मात्र ८४ लक्ष मुख वगैरः एक से एक विलक्षण] मटक रहा हूं ओहो हो यह जगत, कैसा........विस्तार वाला, बन्ध मोक्ष के दो बड़े भारी इंजलासों सहित, मेरी एक अदा ही निकली, प्यारे मोजें उड़ा, हां हां संसार रूपी मौजें उड़ाता रह, आनन्द को इधर उधर, पुष्प की सुगंधिवत्, बिना इस अभिमान के मैं कुछ कर रहा हूं फेंकता रह, सब शरीर-क्या स्थावर और क्या जंगम, तेरी ही दिल्लगी है तेरी ही मस्ती है, समुद्र की तरंगों में परस्पर फ़ासले दीखो-भलेही, परंतु जल से सब बराबर फासिले पर, क्या जल रूप ही हैं तैसे मुझ आत्म रूपी जल में स्थावर जंगम रूप जगत, चाहे जैसा दीखने पर भी मुझ से दूर नहीं—मेरा ही स्वरूप है, लो बन्ध मोक्ष क्या निकली—माया का एक चकमा, मेरी पटरानी (फ़ुरना—चमत्कार) की एक अदा—और पटरानी वटरानी क्या—मैं ही पटरानी और मैं ही खुद राजा, फ़ुरना ही मेरी पटरानी माया है जैसे सूर्य में किरण फूल में सुगंध तैसे मुझ में फ़ुरना— ॐ ॐ ॐ

ॐ
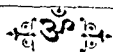
जगत एक खिलोना है

स चिदानन्द को सब विश्व अपना आत्माही भासता है जिधर को नज़र उठाता है उधर पना ही फ़ोटो दीखता है, एक ही प्रकार का एकही फ़ोटो ना प्रकार के चोखटों में (देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि) जड़ा ा दीखता है, और सब पर सच्चिदानन्द बादशाह का नाम अस्ति, भाति. प्रिय) 'मैं' लिखा हुआ स्पष्ट भासता है। हीं कहीं स्थावर पदार्थों में स्याही (तमोगुण) अधिक होने कारण ' मैं ' स्पष्ट नहीं भासता है सच्चिदानन्द को कोई ह: जड़, तथा अज्ञानी भासता ही नहीं है, ज्ञानी, अज्ञानी ज्ञासू, विषयी, पामर, पशु, पक्षी, तथा बन्धन के क्लेश- क्ती के सुख-ईश्वर-जीव-ब्रह्म-इत्यादि इत्यादि, सर्व मुझ ःतत्व में इस तरह लय होते जाते हैं-जिस तरह तरंग त बुदबुदा आदि समुद्र में, न मानो तो प्रत्यक्ष अनुभव लो, (सुषुप्तिमें) और देख लो राजिस्टरी लेख, ' मय्य-खंड खाम्भोधौ बहुधा विश्व वीत्रयःउत्पद्यंते विलीयंते माया मारुत भ्रमात्' (शंकर)॥हे संसार के व्याख्यान दाताओ, हे वेदान्तके पदेश करने वालो, ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या के बाजे बजाने वालो या तुमने जगत् को मिथ्या निश्चय किया है ? यदि किया और योंही है तो उपदेश कैसा ? और किसको ? जो जगत ो सत्य मान रहे हैं और बद्धाभिमान करके आपको अत्यंत

दुःखी जान रहे हैं क्या उनको उपदेश करते हो ? प्यारे वे खुद ही असत्य हैं-मिथ्या हैं-स्वप्न पुरुप हैं तो क्या उनकी बात सत्य होसकती हैं ? कदापि नहीं, एक बच्चे के पास एक खिलौना है—एक आदमी दो लट्टुओं को दोनों हाथों से घुमाता आगेको चलता नज़र आता है, प्यारे क्यों उसका लट्टू घुमाना तथा चलना सत्य है ? क्या वह पुरुप खुदभी जानता है अपने दिलमें कि आहा हा मैं कैसी मौज में लट्टू घुमा रहा हूं-और कैसी जल्दी आगे को दौड़ता हूं ? हर्गिज़ नहीं, हर्गिज़ नहीं, तो फिर आप उससे क्या कहते हो कि बस बस, अब बैठ कर आराम कर ! थक जायगा, ज़ियादः देर घुमाने से बुखार आजायगा, प्यारे वह पुरुप ही नहीं है (वह तो एक रमकडा है रमकडा खिलौना) तो उसको थकान कैसी ? और उसको दुख कैसा, कहाँ ? और तुमारा उपदेश करना कि बैठजा थक जायगा सार्थक कैसे होगा ? यह संसार मुझ तत्वों के तत्व सच्चिदानन्द का खिलौना है, तमाशा है, खेल है, स्वप्न है मैं तो इसको (संसारको) सत्यनहीं जानता तो उसकी चेष्टाओं को (मैं दुःखी हूं, मैं बद्ध हूं, मैं मुक्तहूं, इन वृत्तियों को) सत्य कैसे जानूं ? और उन वृत्तियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति को उपदेश भी क्या करूं ? यदि स्वप्न में किसीको मालूम होजाय कि यह स्वप्न है, तो क्या उस में राग द्वेप करेगा ? ज्ञानी अज्ञानी में विपयी विरक्तमें मुक्तबद्धमें भेद मानेगा,? हर्गिज़ नहीं, तुम धर्मात्मा हो, क्या नाटक में भिखारी बने पुरुपको देखकर तुमारे चित्तमें दया आवेगी ? उसको दान दोगे ?

तुम विषयी हो क्या नाटक में मिथ्या स्त्री को देख कर तुमारा काम देव जागेगा ? उस की तरफ़ विषयी पुरुष की तरह नेत्रादि से कुछ इशारा करोगे ? क्या धन ख़र्च करके उस को भोगने को आपकी इच्छा होगी ? हर्गिज़ नहीं कदापि नहीं, तमाशा है, नाटक देखने वालों का काम तो देखना ही है, और प्रसन्न होना ही है यदि नाटक की दमयंती को जंगल में दुखी और रोते देख कर तुम भी रोने लगो या सुस्त होजाओ, तात्पर्य यह कि तुमारे दिल पर कुछ असर होजाय तो हे नाटक द्रष्टा उस वक्त उतने मिनिट या सैकिन्ड के वास्ते अवश्यमेव तू भूल में है ! उस दृश्य के मिथ्यात्व का (यह तो नाटक है मिथ्या) ख्याल नहीं रहा है, तू शुद्ध, पृथक्, द्रष्टा, उस समय उसके साथ मिलगया है और आपे को भूलगया है, कि ' मैं साक्षी हूं '। प्यारे शोक मतकर, आपे को देख, प्रथम तो यह विचार कि यह दमयंती दुखी है, तू दुखी नहीं है, तू क्यों रोता है, तिस पर भी यह देख कि दमयंती भी सच्ची दमयंती नहीं है, वह तो नाटक की है, झूटी है, फिर तेरा रोना वृथा है; यदि दमयंती के साथ में नाटक देखने वाले भी रोने लगें तो वे नाटक देखने वाले नहीं हैं वे भी नाटक के एक्टर हैं इस लिये सच्चिदानन्द अपनी अर्द्धांगी, महामाया, फुरना, चमत्कार को देख देख मग्न हो रहा है इसको तमाशे की तरह देख रहा है यह दुनिया यह नाटक यह अहंकार से आदि लेकर मोक्षपर्यंत जादू का खेलही हायरी है, मुझको अपने अंगर

में देखो शरीरों का भरोसा हर्गिज़ मत करना, भूल कर भी और न शरीरकृत उपदेशों की आशा करना ॐ

बिनमांगे मोतीमिलें-मांगे मिले न भीख

प्यारो जिस चीज़ की तुमको इच्छा है वह कदापि नहीं मिलेगी- हाँ अगर इच्छा को दूर करके उसकी बू तक दिल में न रहने दोगे तो वही चीज़ तुमारे क़दमों को चूमेगी 'बिन मांगे मोती मिलें मांगे मिले न भीख—परमात्मा के दर्बार में भिखारियों को जगह नहीं है मांगने वालों से परमात्मा भी बचता है अगर तुम तमाम दुनियाँ को तुच्छ करके देखो और उसकी अभिलाषा न करो तो तमाम विश्व तुमारा ही होजावे-और प्यारो अच्छी तरह बिचार कर देखोगे, नहीं २, ज़रा भी विचार कर देखोगे तो तुमको माल्म हुए बग़ैर न रहैगा कि नाश होजाने वाली चीज़ (तिसपर भी चाहे जब नाश होजाने वाली चीज़) की इच्छा करना और इच्छा भी कैसी कि उस झूटी चीज़की प्राप्ति के उपाय में मर मिटना सरीहन बेवक़ूफ़ी और गवाँर पन है, आप परमात्मा के दर्बार में से- दारुश्शिफ़ा से दुनियवी नाशवान चीजें यानी आज़ार माँगते हो आपकी अक्लमंदी क्या इसी में समारही है प्यारो आँख खोलो, होश में आओ और दुनियवी चीज़ों को दिल में जगह मत दो दुनियवी .।हिशें उड़ादो- उड़ादो और सच्चिदानन्द हाथ उठाकर कहता

है कि सांसारिक इच्छाएं अगर आप शून्य-सिफ़र (०) में बदल दोगे तो वही सिफ़र शिव रूप यानी कल्याण रूप यानी सर्व सुखों का- सुख मात्र का मंबा- खान बन जायगा- प्यारो अपने २ दिलों में एक २ मिनिट बिचार कर देखो तुमको मालूम होगा कि जब २ तुमको इच्छा होती है (किसी भी छोटी मोटी चीज़ की सही) तब २ ही तुमको कष्ट होता है और जब २ निरिच्छ होते हो तब २ ही आनंद रूप होते हो, जब तुम अच्छी तरह से बारंबार अनुभव करचुके हो तो फिर क्यों इच्छा से पला नहीं छुड़ाते हो- इच्छा नहीं है बाबा यह तुमारे शरीर में फोड़े फुंसी हैं, छोटी इच्छा फुंसी है और बड़ी फोड़ा है- किसवास्ते ख़ाहिश रूपी चेचक के मर्ज़ में मुब्तला हो रहे हो- और बिषय रूपी मरहम लगा २ कर उन्हें बढ़ाते हो-याद रखना नासूर होजावेगी (भरिया फूटा ज़ख़म बन जावेगी), आओ वैराग्य रूपी जल से पहली लगी मरहम को साफ़ करलो और आत्म ज्ञान रूपी तेज़ाब चुपड़ दो, नहीं नहीं खूब धीरज से आहिस्ता आहिस्ता मलो और जानों दुख था ही नहीं, ऐसा होजायगा. जब तक चेचक का मर्ज़ है तब तक आप दूसरों के साथ भला नहीं कर रहे हो उन को भी मरीज़ बना रहे हो यह उड़नी बीमारी है, इस का इलाज करो तुम को भी सुख होगा और दूसरों को भी नुकसान न पहुंचेगा—

ॐ ॐ ॐ

आत्म लीला

जैसे समुद्र अपने आप में समाता नहीं, आनन्द मौजों के रूप में ज़ाहिर हो रहा है सूर्य में प्रकाश समाता नहीं, तरह तरह की किरणों के रूप में ज़ाहिर हो रहा है तैसे ही हे प्रियतम आत्मन् तू जड़चेतनात्मक, जगत् रूप, स्थावर जंगम रूप हो रहा है, सूर्य अर्थात् तेज से जल उत्पन्न होता है जल से पृथ्वी आदि भौतिक पदार्थ, जड़ी बूंटी, पहाड़, वृक्ष, नदी नाले, पशु, आदमी, परंतु सूर्य कर्त्तापन के तुच्छ अभिमान को नहीं करता है, और हो रहा है सब उसी की सत्ता से, 'सब कुछ कर्त्ता तो भी अकर्त्ता' वाला मामला है, तैसे हे सूर्य चन्द्रमा विद्युतादि के भी प्रकाशक सच्चिदानंद, यह जगत तुझ से ही पैदा हुआ है, तू ही जगत् रूप हो रहा है, तूही कहीं सिंह के रूप में खूंख्वार बना है तो तू ही उस से (आप ही आप से) डरता है, तू आप ही तो माशूक बना निज़ारे मारता है और आप ही उस पर (आप ही आप पर) जान देने को तय्यार है, तू आप ही धर्माधर्म में प्रवृत्त हो रहा है और आप ही उस का फल दाता बना हुआ है क्या क्या कहूं प्यारे अजब तरह का ठाठ है, तू आप ही आप है, दूसरे का अत्यंताभाव है न कभी तुझे बंधन हुआ न मोक्ष की ज़रूरत हुई, हे आत्म रूपी पट ! यह बंध मोक्ष, कर्त्ता कारण कर्मादि निज़ारे तुझ पर चित्र हैं, किस तरह ? जैसे सूर्य में नाना प्रकार के रंग और आकाश में नीलता, आकाश में

नीलता है भी नहीं और दीखती भी है तैसे तुझ में संसार रूपी नीलता (कलंक) है भी नहीं और दीखती भी है। यह तेरी माया है-शक्ति है-महिमा है-चमत्कार है,दमक है-फुरना है (फुरना की न्याई)—संसार तेरा जुलूस है यह तेरी सवारी है माया (समष्टि शक्ति) और अविद्या (व्यष्टि शक्ति) तेरे वाहन हैं-अरे ! नहीं —भूलगया तू आपही सवारी और आप ही सवार है—हे कृष्ण तू आप ही अपनी लाठी को पैरों के बीच रखकर आप ही घोड़ा बना हुआ दौड़ता है और आप ही सवार का अभिमान करके खुश हो रहा है-भईवाह २ सवार भी आप और घोड़ा भी आप-चल रहने दे अब तो बहुत हुई-हां-थक जायगा फिर.......... नहीं २ हर्गिज़ नहीं थकने का यह तो दौड़ नहीं रहा है, जो थकजायगा-यह तो पर्दे पर-आत्मरूपी पट पर-घुड़दौड़ का चित्र है-दौड़ता सा दीखता है-है वहां का वहीं शांतरूप ज्यों का त्यों और वास्तव में न ज्यों न त्यों,घोड़ा है ही नहीं वह तो कागज़ है कागज़—प्यारे आत्मन् ? तू ही तू है और तेरे सिवाय जो है सो क्या कहूं कहा नहीं जाता-तेरी माया है-माया यानी मौज बिलास-मटक अदा ॐ ॐ ॐ

खुदी और खुदा

खुदी को त्यागो-खुदा हो—सच्चिदानन्द खुदी और खुदा में सिर्फ इतना ही भेद जानना है जितना कटोरी और कटोरे में-छोटे का नाम कटोरी और

आत्म लीला

जैसे समुद्र अपने आप में समाता नहीं, आनन्द मौजों के रूप में ज़ाहिर हो रहा है सूर्य में प्रकाश समाता नहीं, तरह तरह की किरणों के रूप में ज़ाहिर हो रहा है तैसे ही हे प्रियतम आत्मन् तू जड़चेतनात्मक, जगत् रूप, स्थावर जंगम रूप हो रहा है, सूर्य अर्थात् तेज से जल उत्पन्न होता है जल पृथ्वी आदि भौतिक पदार्थ, जड़ी बूंटी, पहाड़, वृक्ष, न नाले, पशु, आदमी, परंतु सूर्य कर्त्तापन के तुच्छ आ को नहीं करता है, और हो रहा है सब उसी की स 'सब कुछ कर्त्ता तो भी अकर्त्ता' वाला मामला है, तै चन्द्रमा विद्युतादि के भी प्रकाशक सच्चिदानंद, यह से ही पैदा हुआ है, तू ही जगत् रूप हो रहा है सिंह के रूप में खूंखार बना है तो तू ही उस आप से) डरता है, तू आप ही तो माशू मारता है और आप ही उस पर (आप देने को तय्यार है, तू आप ही धर्माधर्म और आप ही उस का ... दाता बना कहूं प्यारे अजब तरह ... ाठ है, त का अत्यंताभाव है ... तमे ... ज़रूरत हुई, हे अ कर्मादि निज़ारे नाना प्रकार के

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्त्तते तद्धाम परमं मम ॥

किसी ने कहा हैः-याफ़ुतम् अज़ हज़रते हक़ ई सबक़
बक़ बक़ो ज़क़ोज़क़ वहक़श नाहक़स्त-
कहो क्याकहूं ? हस्त-इल्म-सरूर-(अस्ति भाति प्रिय) सच्चिदानन्द ॥ ॐ ॐ ॐ

आत्म ज्ञानी और शरीराभिमानी

तीन आदमी कुर्त्ते पहने हुवे कहीं जारहे थे, पहिले को कुर्त्ते से अत्यंत प्रीति थी और बाक़ी दो को बिल्कुल प्रीति न थी, परंतु उन दोनों में इतना भेद ज़ुरूर था कि एक का कुर्त्ता ढीला था और दूसरे का तंग था-उतारने में ज़रा तकलीफ़ होती थी, रास्ते में चोर मिल गये, तीनों के कुर्त्ते उतरवा लिये, जिस को कुर्त्ते से प्रीति थी वह रोने लगा और बाद में भी कुर्त्ते की याद कर कर के दुख ही पाता रहा, और बाक़ी दो आदमियों ने ज़रा परवाः न की, हां जिस का कुर्त्ता तंग था उस को उतारते वक्त कुछ तकलीफ़ हुई लेकिन बाद में ख्याल भी नहीं रहा और जिस का कुर्त्ता ढीला था उस ने एक दम, फ़ौरन उतार दिया हँसते हुवे, और बाद में भी कुछ तकलीफ़ न हुई, अज्ञानी वह है जिस ने शरीर रूपी कुर्त्ते से प्रीति कर रक्खी है, जिस ने 'मैं शरीर हूं' ऐसा मान रक्खा है और ज्ञानी वे हैं जिन्हों

बड़े का नाम कटोरा-३॥ हाथ के विल में अभिमान करनेका नाम ख़ुदी है और इस विल से अगल होकर आपको पूर्ण-व्यापक-बड़े से बड़ा जानना ही ख़ुदा होना है-ख़ुदा जिसे कहते हैं उसका नाम दरअस्ल ख़ुदा नहीं है- वहां तो 'यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह' का मामला है- अंतःकरण ने एक चीज़ के दो नाम रखवाये हैं-अंतःकरण ही के भीतर वाले का ख़ुदी-और बाहर भीतर पूर्ण का ख़ुदा-अंतःकरण न रहने पर ख़ुदी भी नहीं और खुदा भी नहीं-बस वही है- जिसका नाम कुछ नहीं-या यों कहो कि वही है जिसके नाम अंतःकरण की दृष्टि से ख़ुदी और ख़ुदा होगये थे आकाश-आकाश मात्र है घट की दृष्टि से उसके दो नाम हो जाते हैं-घट के अन्दर वाले का घटाकाश नाम और बाहर भीतर पूर्ण का, महाकाश नाम-वास्तव में घटाकाश ही महाकाश है या घटाकाश भी और महाकाश भी दोनों आकाश मात्र हैं-और अंतःकरण है कल्पित-मिथ्या-नमूदी क्योंकि इस का अभाव अनुभव द्वारा देखता है सुषुप्ति में-सुषुप्ति में आपको ख़ुदी का अभिमान रहता है या ख़ुदा का? सच कहना-अपने अनुभव से जो सिद्ध हुआ हो, वह कहना-दूसरे की आंख से देखा हुआ नहीं कहना—सुषुप्ति में कुछ है तो ज़रुर-और वह तुमही हो ख़ुदा और ख़ुदी दोनों नामों से मुबर्रा—

न मैं बंदा न ख़ुदा था मुझे मालूम न था।
दोनों इल्लत से जुदा था मुझे मालूम न था-वतन,

इस वास्ते इस कल्पित अंतःकरणके कियेहुए (रचे हुए) ख़ुदी और ख़ुदा दोनों कल्पितही हुए-न जैसे-फिर क्यारहा? वही-

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

किसी ने कहा है:-याफ़तम् अज़ हज़रते हक़ ईं सबक़
बक़ बक़ो ज़क़ोज़क़ वहक़श नाहक़स्त-
कहो क्याकहूं ? हस्त-इल्म-सरूर-(अस्ति भाति प्रिय) सच्चिदानन्द ॥ ॐ ॐ ॐ

आत्म ज्ञानी और शरीराभिमानी

तीन आदमी कुर्त्ते पहने हुवे कहीं जारहे थे, पहिले को कुर्त्ते से अत्यंत प्रीति थी और बाक़ी दो को बिल्कुल प्रीति न थी, परंतु उन दोनों में इतना भेद ज़रूर था कि एक का कुर्त्ता ढीला था और दूसरे का तंग था-उतारने में ज़रा तकलीफ़ होती थी, रास्ते में चोर मिल गये, तीनों के कुर्त्ते उतरवा लिये, जिस को कुर्त्ते से प्रीति थी वह रोने लगा और बाद में भी कुर्त्ते की याद कर कर के दुख ही पाता रहा, और बाक़ी दो आदमियों ने ज़रा परवाः न की, हां जिस का कुर्त्ता तंग था उस को उतारते वक्त कुछ तकलीफ़ हुई लेकिन बाद में ख्याल भी नहीं रहा और जिस का कुर्त्ता ढीला था उस ने एक दम, फ़ौरन उतार दिया हँसते हुवे, और बाद में भी कुछ तकलीफ़ न हुई, अज्ञानी वह है जिस ने शरीर रूपी कुर्त्ते से प्रीति कर रक्खी है, जिस ने 'मैं शरीर हूं' ऐसा मान रक्खा है और ज्ञानी वे हैं जिन्हों

ने विचार द्वारा जान लिया है कि शरीर (कुर्त्ता) हम नहीं हैं, हम शरीर से पृथक हैं (आत्म रूप)—ज्ञानियों में एक ने जाना तो है कि मैं शरीर नहीं हूं परंतु बार बार अभ्यास करके उस ज्ञान को दृढ नहीं किया है उस को व्यवहार काल में शरीराध्यास बना हुआ है वह तंग कुर्त्ते वाला है—दूसरे ने जान कर कि मैं शरीर नहीं हूं बार बार अभ्यास करके ऐसा दृढ निश्चय करलिया है कि शरीराध्यास स्वप्न में भी नहीं होता, वह ढीले कुर्त्ते वाला है, वह बिल्कुल आज़ाद है, आज़ाद तो, मुक्त तो, तंग कुर्त्ते वाला भी है परंतु इस में कुछ विशेषता है, और पहिला, कुर्त्ते से प्रीति रखने वाला बद्ध है—प्यारे समझो, समझलो आप को, आत्मा को, शरीर से पृथक, निकलो इस जेलखाने से बाहर—जो मकान गिरने वाला हो उस के रहने वालों को चाहिये कि फ़ौरन उस से बाहर निकल कर खड़े हो जावें, सच्चिदानन्द सत्य कहता है कि शरीर गिरने वाले हैं अगर ज़रा भी बुद्धि रखते हो तो इस गिरऊ मकान में से फ़ौरन बाहर निकल खड़े हो, वर्नः याद रक्खो पछताओगे—

ॐ ॐ ॐ

एक आम ग़लती

बहुधा लोग कहते हैं कि ब्रह्मज्ञानी सब को आत्म रूप जानता है इस वास्ते वह भंगी चमार के

साथ भी खान पान व्यवहार करे तो हानि नहीं है अगर वह मुंह से तो कहता रहे कि सब सृष्टि मेरा ही स्वरूप है और भंगी चमार कुत्ते आदि का छुआ हुआ न भोजन करे तो यह ब्रह्मज्ञान कथन मात्र ही हुआ, दूसरे लोग जो अपने को पण्डित मान बैठे हैं वे कहते हैं कि 'सब को आत्म रूप ब्रह्म रूप देखे परंतु वर्ते नहीं और इस में गीता का श्लोक 'विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि, शुनिचैव श्वपाके च पंडिताः सम दर्शिनः' प्रमाण देकर कहते हैं कि कृष्ण परमात्मा, समदर्शी होने को कहते हैं न कि समवर्त्ती—

सच्चिदानन्द कहता है कि आत्मावित् (ब्रह्मज्ञानी) सब को आत्म रूप देखता है भंगी चमार कुत्ते आदि को वह पृथक नहीं मानता और पृथक है भी नहीं कारण कि कुल प्रपंच, संसार को वह आत्मा में स्वप्नवत् जान गया है—क्या भंगी चमार के शरीरों को अपने से पृथक जानता है? हर्गिज़ नहीं क्या वह भंगी चमार के साथ भोजन नहीं कर रहा है? ज़रुर २ कर रहा है और करना कराना क्या, वह तो कुल सृष्टि को अपना स्वरूप ही निश्चय कर चुका है—क्या भंगी और क्या चमार, कुत्ता चांडाल आदि, वह अपने को सब रूप ही जानता है, अगर कोई अपने को ब्रह्मज्ञानी सिद्ध करने की इच्छा से या अपने को पूरा ब्रह्मज्ञानी हो जाने की इच्छा से भंगी चमार के साथ भोजन करले और ऐसा कर लेने पर दूसरों की दृष्टि में वा अपनी खुद की दृष्टि में वह ब्रह्म ज्ञानी माने तो उसकी बड़ी भारी भूल है, भूल क्या? वह निपट

ने विचार द्वारा जान लिया है कि शरीर (कुर्त्ता) हम नहीं हैं, हम शरीर से पृथक् हैं (आत्म रूप)—ज्ञानियों में एक ने जाना तो है कि मैं शरीर नहीं हूं परंतु वार वार अभ्यास करके उस ज्ञान को दृढ नहीं किया है उस को व्यवहार काल में शरीराध्यास बना हुआ है वह तंग कुर्त्ते वाला है—दूसरे ने जान कर कि मैं शरीर नहीं हूं वार वार अभ्यास करके ऐसा दृढ निश्चय करलिया है कि शरीराध्यास स्वप्न में भी नहीं होता, वह ढीले कुर्त्ते वाला है, वह विल्कुल आज़ाद है, आज़ाद तो, मुक्त तो, तंग कुर्त्ते वाला भी है परंतु इस में कुछ विशेषता है, और पहिला, कुर्त्ते से प्रीति रखने वाला बद्ध है—प्यारे समझो, समझलो आप को, आत्मा को, शरीर से पृथक, निकलो इस जेलख़ाने से बाहर—जो मकान गिरने वाला हो उस के रहने वालों को चाहिये कि फ़ौरन उस से बाहर निकल कर खड़े हो जावें, सच्चिदानन्द सत्य कहता है कि शरीर गिरने वाले हैं अगर ज़रा भी बुद्धि रखते हो तो इस गिरऊ मकान में से फ़ौरन बाहर निकल खड़े हो, वर्नः याद रक्खो पछताओगे—

ॐ ॐ ॐ

एक आम ग़लती

बहुधा लोग कहते हैं कि ब्रह्मज्ञानी सब को आत्म रूप जानता है इस वास्ते वह भंगी चमार के

साथ भी खान पान व्यवहार करे तो हानि नहीं है अगर वह मुंह से तो कहता रहे कि सब सृष्टि मेरा ही स्वरूप है और भंगी चमार कूत्ते आदि का छुआ हुआ न भोजन करे तो यह ब्रह्मज्ञान कथन मात्र ही हुआ, दूसरे लोग जो अपने को पण्डित मान बैठे हैं वे कहते हैं कि 'सब को आत्म रूप ब्रह्म रूप देखे परंतु वर्ते नहीं और इस में गीता का श्लोक 'विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि, शुनिचैव श्वपाके च पंडिताः सम दर्शिनः' प्रमाण देकर कहते हैं कि कृष्ण परमात्मा, समदर्शी होने को कहते हैं न कि समवर्त्ती—

सच्चिदानन्द कहता है कि आत्मावित् (ब्रह्मज्ञानी) सब को आत्म रूप देखता है भंगी चमार कुत्ते आदि को वह पृथक नहीं मानता और पृथक है भी नहीं कारण कि कुल प्रपंच, संसार को वह आत्मा में स्वप्नवत् जान गया है— क्या भंगी चमार के शरीरों को अपने से पृथक जानता है? हर्गिज़ नहीं क्या वह भंगी चमार के साथ भोजन नहीं कर रहा है? ज़रुर २ कर रहा है और करना कराना क्या, वह तो कुल सृष्टि को अपना स्वरूप ही निश्चय कर चुका है— क्या भंगी और क्या चमार, कुत्ता चांडाल आदि,वह अपने को सब रूप ही जानता है, अगर कोई अपने को ब्रह्मज्ञानी सिद्ध करने की इच्छासे या अपने को पूरा ब्रह्मज्ञानी हो जाने की इच्छा से भंगी चमारके साथ भोजन करले और ऐसा कर लेने पर दूसरोंकी दृष्टिमें वा अपनी खुदकी दृष्टि में वह ब्रह्म ज्ञानी माने तो उसकी बड़ी भारी ... भूल ... मिथ्

अज्ञानी है, स्वप्न में तृण से ब्रह्मा तक, सब, स्वप्न द्रष्टाही है खुद, यह बात सब के अनुभव सिद्ध है, जो तृण से ब्रह्मा तक सब को आपे में इस तरह देखे जैसे समुद्र आपे में तरंग बुल बुले भँवर आदि को, वह किस के साथ खाय और किस के साथ न खाय, खाना और न खाना, सब व्यवहार वह आपे में ही मान रहा है, स्वप्नवत्, वह आपे को एक शरीर ही वा एक शरीर रूप ही नहीं मानता, वह तो ब्रह्मांड भर के शरीरों में वा ब्रह्मांड भर के शरीर रूप (विराट रूप) आप को मान चुका है, जो एक शरीर से दूसरे शरीर के साथ ज़ाहिरा एकता करके आप को तत्ववित् मानता है वह तत्ववित् हर्गिज़ नहीं है, वह तो ३॥ हाथ के टापू का दीन क़ैदी है, वह कृत्रिम एकता को ही भूल से वास्तविक एकता मान बैठा है, वह यह नहीं जानता कि एकता वास्तविक है, एकता कभी निवृत्त हो ही नहीं सक्ती है, उसको वास्तविक, अकृत्रिम एकता में संदेह है तभी तो ज़ाहिरा एकता करना चाहता है, दृष्टांत एक गीदड़ और नाके की शत्रुता होजाने से नाके ने गीदड़ के मारने का इरादः किया और कई मर्तबः गीदड़ के मारने में नाकामयाब होने पर आख़िरकार मुर्दे की तरह, सांस बन्द करके जल के किनारे पड़ गया और अपनी स्त्री नाकी से कहा कि किसी तरह फुसला कर गीदड़ को उसके पास बुलादे, गीदड़ जल पान करने नदी किनारे आया तब नाकी ने कहा कि आज मेरे पति का देहान्त होगया है कृपा कर इसकी अंतिम क्रिया कीजये, गीदड़ ने

दूर से ही कहा कि क्या सच मुच नाका मर गया, अगर ऐसा है तो मैं अवश्य अंतिम क्रिया करूंगा, परंतु मुझे इसके मरने में संदेह है कारण कि मुर्दे तो अपान वायु छोड़ा करते हैं (पादा करते हैं) और इस में यह बात मैं नहीं देखता हूं यह सुन कर झूंट मूंट का मरा हुआ नाका पादने लगा-गीदड़ दूर भाग गया और कहने लगा कि बदमाश मैं तेरी चाल में न आऊँगा मुर्ख, कहीं मुर्दे भी पादा करते हैं ?

जैसे नाके ने अपान वायु छोड़ कर आप को मुर्दा जतलाना चाहा था तैसे ही झूठे ब्रह्मज्ञानी ज़ाहिरा एकता करके ही एकता की सिद्धि करते हैं-यह उन की ग़लती है सच्चिदानंद का मतलब यह हर्गिज़ नहीं है कि जो सब के साथ खान पान करे वह ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सक्ता-सच्चिदानंद का तात्पर्य सिर्फ़ यह है कि ऊपर से-ज़ाहिरा एकता करे, तो वाह २ और न करे तो वाह २-ज़ाहिरदारी के व्यवहार से ब्रह्मज्ञान को कुछ संबंध नहीं है और विचार से देखा जावे तो ज़ाहिरदारी में एकता पूरी २ होना बिल्कुल-बिल्कुल असंभव है-नाना प्रकार से प्रतीत होती हुई सृष्टि में एकता कैसे हो ? एकता तो वही सच्ची है जो वास्तविक है यानी आत्मा ही एक हो सक्ता है न कि शरीरादि, क्यों कि आत्मा एक है ही-जैसे वृक्ष के फल फूल डाली पत्ते में जल या तरी,अगर फूल, पत्ते के साथ मिलकर चाहे कि एकता करूं तो उसकी ग़लती है-वह तो पत्ते के साथ [जल रूप में) मिला ही हुआ है-और मिला हुआ क्या-कभी जुदा

हुआ ही नहीं है जल ही फूल है और जल ही पत्ता है-फूल और पत्ता (नाम रूप की अपेक्षा से) एक नहीं है परंतु जल फूल भी है और पत्ते भी हैं तैसे शरीरों की एकता एकता नहीं है, आत्मा की ही एकता वास्तविक, अकृत्रिम हमेशः की, एकता है ॐ ॥

सुषुप्ति और समाधि

सुषुप्ति में जगत् नहीं है अहंकार नहीं है केवल आत्मा ही आत्मा है [प्रश्न] क्या अज्ञान भी नहीं है—अज्ञान तो रहता है (उत्तर) अज्ञान भी नहीं है, अगर कहो कि अज्ञान है तो यह भी बताना पड़ेगा कि किस चीज़ का अज्ञान है अगर जगत् का अज्ञान मानो तो बिल्कुल गलती है क्योंकि जगत् है ही नहीं सुषुप्ति में, तो उसका अज्ञान और ज्ञान कैसा? और यदि जगत् के अभाव काल में भी जगत् के न प्रतीत होने को अज्ञान कहते हो तो समाधी में भी अज्ञान मानो-अगर स्वरूप का अज्ञान मानते हो यानी आत्मा का, तो क्या समाधि में आत्मा का विशेषरूप से ज्ञान रहता है? अगर नहीं रहता तो फिर सुषुप्ति में भी विशेष रूप से आत्मा का ज्ञान नहीं रहता, उस (सुषुप्ति) को घटकी दृष्टि से क्यों देखते हो, अगर अनुभव द्वारा

निष्पक्षपात होकर विचारोगे तो सुषुप्ति तथा समाधि दोनों ही में ज्ञान (वृत्तिज्ञान) और अज्ञान का अभाव मानना पड़ेगा कारण कि 'मैं निर्विकल्प आत्मा हूं-सत्‌चित्‌आनन्द रूपआत्मा हूं'ऐसा ज्ञान समाधि में भी नहीं होता यदि समाधि में ऐसा ज्ञान मानोगे तो वहां द्वैत होने से समाधि का लक्षण ही न रहेगा—और यदि समाधि कालमें समाधि सुखका विशेष रूप से ज्ञान मानोगे तो समाधि का सुख ब्रह्मानन्द न कहला कर विषयानन्द कहा जावेगा—और सुषुप्ति के सुख को ब्रह्मानन्द न मानोगे तो विषयानन्द मानना पड़ेगा-इस हालत में अंतःकरण जिसके द्वारा विषय का अनुभव किया और विषय दोनों मानने होंगे और फिर सुषुप्ति तथा स्वप्न में भेद कहना असंगत होगा-इस लिये सुषुप्ति तथा समाधि दोनों में ब्रह्मानंद ही मानो तो कुछ हानि नहीं मालूम होती है ॥

(प्रश्न) ऐसा मानें तो समाधि के संपादन करने में वृथा परिश्रम है और यह भी शंका होती है कि सुषुप्ति हर शख्स को चाहे ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी हो प्राप्त है—पशु पक्षी को भी प्राप्त है तो सब को कृतकृत्यता की प्राप्ति क्यों नहीं होती है? (उत्तर) सुषुप्ति और समाधि की अवस्था एक सी है—ज़रा भी फ़र्क नहीं है-परन्तु प्रवेश तथा उत्थान काल में फ़र्क है इसी लिये सुषुप्त पुरुष आप को कृतकृत्य नहीं मानता है-इस के लिये एक दृष्टांत सुनियेः—

दो पुरुषों को पेड़ा खाने की तीव्र इच्छा थी, एक को किसी के यहां दावत में पेड़े खाने को मिले परंतु उसने यह

नहीं जाना कि 'पेड़ा इसी को कहते हैं–खाने से पहिले तथा पीछे उसको पेड़े का ज्ञान नहीं हुआ इस वास्ते पेड़ा खा लेने पर भी उसको पेड़े की इच्छा बनी रही और वह यह जानता रहा कि मैंने आज तक कभी पेड़ा नहीं खाया–दूसरे पुरुष को उसके मित्र ने पेड़ा दिया और कहा कि देख यही पेड़ा होता है ले खाले, जिसकी तुझे बहुत दिनों से इच्छा थी वह है यह–उसको पेड़ा खाने से पहिले तथा पीछे प्रसन्नता हुई और बाद में भी उसने कभी पेड़े का अज्ञान नहीं अनुभव किया- पेड़ा खाकर भी पेड़े का स्वाद दोनों को बराबर ही आया परन्तु एक को तृप्ति प्राप्त होगई और दूसरे को न हुई–इसी तरह सुषुप्ति और समाधि दोनों में ब्रह्मानन्द है सुषुप्ति वाले को कृतकृत्यता नहीं प्राप्त होती और समाधि वाले को कृत् कृत्यता होजाती है जैसे जानकर पेड़ा खाने वाले को विशेष आनन्द होता है तैसा समाधी में (दार्ष्टांत में) नहीं है क्योंकि समाधि में भी विशेष आनन्द का भान नहीं होता और सुषुप्ति में भी नहीं होता कारण कि अंतःकरण का अभाव दोनों में है– सुषुप्ति और समाधि में सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है जितना (क) और [क] में–'क' का स्वरूप दोनों में एकसा है परन्तु कोष्ट के आकार में भेद हैं इसी तरह सुषुप्ति और समाधि मात्र में भेद नहीं है, *प्रवेश तथा उत्थान काल में अज्ञान सहित का* नाम सुषुप्ति है और प्रवेश तथा उत्थान काल में ज्ञान सहित का नाम समाधि है, सुषुप्त को कर्त्तव्य बाक़ी रहता है और समाधिवान को नहीं रहता, परंतु सुषुप्तिमें अज्ञानको सच्चिदानन्द

हर्गिज़ न मानेगा क्यों कि कोई प्रबल युक्ति नहीं मिलती है और अनुभव से भी अज्ञान प्रतीत नहीं होता, सुषुप्ति विषे सरूप में, निज रूप में, अपने वास्तव स्वरूप ब्रह्म रूप में स्थिति हो जाती है परंतु इतने मात्र से यानी स्वरूप में स्थिति मात्र से मुक्त नहीं होता– ज़ियादः विचार किया जावे तो मानना होगा कि आत्मा अपने स्वरूप में सदैव ही स्थित है कारण कि आत्मा और आत्मा के स्वरूप में भेद नहीं है- मुक्ति होती है ज्ञान से (ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः) और किसी प्रकार नहीं हो सक्ती है- और ज्ञान रूपी मरहम की ज़रूरत कब होती है ? जब अज्ञान रूपी गूमड़ा होता है यानी स्वप्न काल में–सुषुप्ति में इस को स्वरूप का अज्ञान नहीं है अनुभव से विचारो- औरों की दृष्टि से मत देखो अपनी दृष्टि से देखो और मौज में गाओ–क्या ?

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधि स्थितिः ॥
संचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो ॥
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम् ॥

रथ की सवारी या एक आफ़त ?

शरीर रथ है इंद्रियाँ घोड़े हैं– मन लगाम है बुद्धि सारथी (कोचमैन) है आत्मा रथमें बैठने वाला है यदि बुद्धिरूप कोचमैन–मन रूपी लगाम को अपने बश में रक्खेगा तो–तो ख़ैर है– नहीं तो स्वतंत्र घोड़े न

मालूम किस खड्डे में रथको गिराकर आत्म रूपी राजा को—रथ में बैठने वाले को तकलीफ़ देंगे-देखना कहीं लगाम बुद्धि रूप सारथी के हाथ से न छूट जावे—खूब मज़बूती से पकड़े रहें नहीं तो खैर नहीं है—देखना होशियार ख़बरदार

वाह भगवन् ! वाह प्यारे आत्मन् ! खूब रथ में बैठे (क़ैदी बने)भला, ऐसे रथ में बैठ कर क्या लिया ? दूसरे की मुट्ठी में अपने को रखने का लाभ ? हर वक्त खौफ़ में रहने का कुछ स्वाद है क्या ? या हर समय के इस विक्षेप में कुछ मज़ा है क्या ? बुद्धि के ठीक और बे ठीक रहने पर अपना सुख दुख मुनहसिर है—इस में कदापि शांति न अनुभव करेगा प्यारे दो ही तरह सुख है, या तो बुद्धि रूप सारथी हमेशः मन रूपी लगाम द्वारा इंद्रिय रूपी घोड़ों को सीधे—अच्छे रास्ते में चलावें, बुरे कुढंगे रास्ते से बचावें या तू रथ में से कूद पड़, रथ से अलग खड़ा होजा, शरीराभिमान को छोड़, इस रथ को छोड़—रथ है या एक आफ़त का टोकरा है—रथ में बैठने वाले को शांति नहीं होती-शरीराभिमानी को सुख शांति, निर्द्वंदता कहां ? छोड़ दे इसे, और देख सुन इस रथ में से कूदकर 'मैं शरीर मात्र ही हूं' इस आभिमान को—गंदे अभिमान को छोड़ते ही बेपटके होकर [५ इंद्रिय और मन से अलग होकर) कहदे—हां हां बेखौफ़ होकर कहदे इस बुद्धिरूप कोचमैन से, कि इस रथ को चाहे जहां लेजा, खड्डे में डाल, कुए-खाई में डाल-चाहे जहां डाल मेरी हानि नहीं-प्यारे ऐसा करते ही तू मुक्त है क्यों ! कूद पड़ रथ में से, हे

हिम्मत ? होजा मैदान में खड़ा इस रथ से कूदते ही-शरीरा भिमान त्यागते ही तुझे सब शरीर, अपने अकेले ही में न भासने लगें तो कहना-जैसे तरंग जब तक तरंगाभिमान को नहीं त्यागती-जब तक आप को जल नहीं जानती तब तक दूसरी तरंगों में और आपे में भेद व भिन्नता देखती है-तरंगाभिमान त्यागने पर-'मैं तरंग नहीं हूं, जल हूं' ऐसा जानने पर सब तरंगों को आपे ही में देखती है वह आप को तरंग नहीं मानती है जल मानती है-तैसे ही सब शरीर रूप रथ तुझे तरंगों की तरह चलते फिरते भासेंगे, तरंग विचारी जल को-समुद्र को कहां लेजा सक्ती है? समुद्र में क्या विकार पैदा करसक्ती है ? वह विचारी तो आप ही महान् समुद्र में मारी २ फिर रही है तैसे ही तुझ को इस रथ (शरीराभिमान) के छोड़ते ही सर्व शरीर-क्या स्थावर और क्या जंगम, आत्मा में-आपे में तरंगों की तरह दीखेंगे-प्यारे समुद्र में तरंग हैं और उसी में चलती फिरती हैं तैसे तुझ में शरीर हैं न कि तू शरीरों में, या यों समझ कि तुझ में सब शरीर हैं न कि एकही शरीर में तू-तू है, तो सब शरीरों में है-एकही में क़ैद मत समझ अगर इस तरह से जानले तो भी मौज होजावे-स्वप्न के शरीर और उनकी क्रियाएँ तुझ स्वप्न द्रष्टा में जैसे है, तैसे ही यहां भी जान-स्वप्न में भी तो कोचमैन की कवायद सुनता ही था लेकिन जागकर हंसता है और कहता है कि मैं तो स्वप्न के सब पदार्थों में तृण से ब्रह्मा तक में आकाशवत व्यापक था-मैं अकेला ही स्वप्न की विशाल सृष्टि की जान था-क्यों

छोडेगा शरीराभिमान को ? या इसी विल में बैठा रहना चाहता है इसमें ही रहना ठीक नहीं है शरीराभिमान छोड़ने का मतलव यह नहीं है कि एक शरीरका अभिमान् छोड़दे और सब बाकी के शरीरों में अभिमान करले-इस तरह तो वही कैदीपन रहेगा-छोटा जेलखाना न सही वड़ा सही-मतलव यह है कि एक ही शरीर का अभिमानी न रह, सब शरीर तेरे ही हैं सब में आत्मत्व भाव जान ले-दर वाके है तो सही ही ॐ

तू स्वयंब्रह्महै-बंधऔरमोक्षतुझमेंकहाँ!

सूर्य कैसा जगमगाता है उसमें से कैसी किरणे निकलती दीखती हैं उन्हीं किरणों ने नाना प्रकार के रंगों का रूप धारण कर रक्खा है, उस (सूर्य) की ही गर्मी से- चमत्कार से विश्वभर को चेतनता प्राप्त होती है, शरीर से जितने काम होते हैं वे सब उसी की गर्मी से, पौदे वढ़ते हैं सो भी उसी की गर्मी से, ज़ियादः कहने से क्या ? आंख का खोलना और बन्द करना, सांस लेना, बोलना, चालना वगैरः का कारण सूर्य ही है। जितने रंग हैं वे सूर्य ही के हैं, चक्षु इन्द्रिय का विषय रूप मात्र सूर्य की ही किरणें हैं और सब से ज़ियादः साफ़ किरण, उसी का अंश चक्षु इन्द्रिय है, नेत्र इन्द्रिय का देवता सूर्य शास्त्र भी कहते ही हैं, सूर्य को कभी यह तुच्छ अभिमान नहीं होता कि मेरी ही गर्मी से, किरणों से सब विश्व का काम चल रहा है, यह तो अपने भाव में ज्यों का त्यों स्थित है, सब किरणें और सब प्रकार के रंग उस में स्वभाविक हैं और

वास्तव में किरणें उस में से निकल नहीं रही हैं, निकलती सी दीखती हैं, उस को (सूर्य को) इस बात का ख्याल नहीं होता है कि आंख और दूसरे सब प्रकार के रंग मुझ से ही पैदा हुवे हैं, अब देखो कैसा तमाशा है कि आंख सूर्य का ही खास अंश या किरण है परंतु सूर्य को, अपने ही अस्ली स्वरूप को देखना चाहती है तो नहीं देख सक्ती है, कमज़ोरी से सूर्य के सामने स्थित नहीं हो सक्ती, हिलने लगती है परंतु वह यह नहीं जानती कि मैं हिलती हूं, इस हिलने का नाम चकाचौंध रख लिया है उसको अपने खुद के हिलने की वजः से सूर्य या स्वयं प्रकाश तारे भी हिलते से, एक क़िस्म की हरकत सी करते, जगमग २ करते, लुप लुप करते दीखते हैं, ऐसा माळूम होता है कि सूर्य या स्वयं प्रकाश तारे में जानों आंख खोलने और बन्द होने की सी क्रिया हो रही है, यह आंख की, खुद की कमज़ोरी का कारण है और ऐसी कमज़ोर क्यों होगई कि अपने ही वास्तव स्वरूप को नहीं देख सक्ती ? उसका कारण यह है कि अंधकार मय पदार्थों को देखने के अभ्यास होजाने से महा प्रकाश रूप सूर्य के संमुख नहीं ठहर सक्ती है-यह बात सबके अनुभव सिद्ध है कि बहुत देर अंधेरे में रह कर यदि कोई सूर्य के सामने आवे तो ज़रूर चकाचौंध लगेगा-अगर महीने पन्द्रह दिन बिल्कुल अंधेरे में रहने के बाद बाहर आया जावे तो सूर्य के सामने तो क्या, साधारण प्रकाश में भी चकाचौंध लगेगा-और यह भी सब जानते हैं कि यदि अंधकार मय चीज़ों का देखना कम किया जावे तो थोड़े दिन चकाचौंध आवेगा फिर अभ्यास

के बल से सूर्य भगवान् के सामने टकटकी लगाने की सामर्थ्य होजायगी और जो अपनी (आंखकी) कमज़ोरी के कारण— अपना कांपना-हिलना ही सुर्य में-लुप २, धवक २, जगमग २ के रूप में—आंख खुलने और बंद होने के से रुप में दीखता था वह न दीखेगा सूर्यका गोला स्पष्ट, बे हरकत भासने लगेगा सूर्य में किरणों का होना स्वभाविक है जैसे अग्नि में उष्णता किरणों में तरह २ के रंगों की प्रतीति भी स्वाभाविक ही है सूर्य की किरण या अंश आंख इंद्रिय का पैदा होना और फिर उसका कमज़ोर होना यानी सूर्य के संमुख न ठहर सकना भी स्वाभाविक है और इस हालत में सूर्य में न होती हुई क्रिया [लुप २ वगैरः] की प्रतीति भी स्वाभाविक ही है; और फिर अभ्यास के बलसे आंखकी कमजोरी दूर होकर सूर्य के सामने टकटकी लगाकर देखना और उसमें (सूर्य में) क्रिया का न प्रतीति होना भी स्वाभाविक ही है, यह याद रहे कि ऊपरः कहे हुए झगड़ों से सूर्य का कुछ ताल्लुक नहीं है वह तो अपने सूर्य भाव में स्थित है—तैसे ही

प्यारे आत्मन्—सूर्यों के भी सूर्य—यह अहंकार, तेरा 'मैं' तेरी एक किरण है जैसे सूर्य की किरण या अंश आंख है-भगवन् तेरी किरण 'मैं या अहंकार' तेरी तर्फ़ देखना चाहती है तब कमज़ोरी के कारण तुझको स्पष्ट—स्थिर साफ़ नहीं देख सक्ती है—ठहर नहीं सक्ती तेरे संमुख, हिल जाती है और वह हिलना यानी क्रिया तुझ में प्रतीति होती है उसको [अंहकार रूपी आंख को]। तेरी ही किरण—अंश या आंख रूपी अहंकार तुझको हिलता सा देखता है यानी तू उसको लुप २

करता, आंख खोलता सा और बन्द करता सा दीखता है. आंख खोलता सा यानी सृष्टि रूप (स्वप्न जागृत) और बन्द करता सा (सुषुप्ति) भासता है, वास्तव में यह क्रिया तुझ में नहीं हैं तेरी किरण, अहंकार में हैं, कमज़ोरी के कारण। और कमज़ोरी है उस में इसलिये कि उसको तेरी दूसरी अंधकार मय किरणोंके देखने का अभ्यास होगया है प्यारे तेरी किरणों में भी तीन प्रकार के रंग, सत, रज, तम हैं, अहंकार में सतोगुण अधिक है और बाकी किरणें ऐसी भी हैं जिन में कहीं रजोगुण की कहीं तमोगुण की ज़ियादती है, तमोगुणी पदार्थों को, अंधकार मय चीज़ों को, शरीरादिक नाम रूपात्मक पदार्थों को देखते देखते तेरी अंहकार रूपी किरणें या आंख कमज़ोर होरही है, यह बात स्वाभाविक है (यही बंधन का स्वरूप है) यदि यह अहंकार रूपी तेरी आंख या किरण अंधकार मय पदार्थों; शरीरादिक को देखना बन्द करके तेरी ही तर्फ़ देखने का अभ्यास बढ़ावे तो तुझको साफ़, ज्यों का त्यों, अक्रिय रूप देख सकने को समर्थ हो जावे, फिर हे निर्विकार आत्मन्! इस अहंकार की क्रिया की प्रतीति तुझ में कभी न हो, जागृत स्वप्न सुषुप्ति तुझ में न भासें, तू इस अहंकार रूप आंख को स्पष्ट, जागृदादि से रहित भासे, यह भी स्वाभाविक ही है (यह मोक्ष का स्वरूप है) परन्तु याद रख कि यह सब झगड़े, बंधन और मोक्ष तेरी किरणों ही में हैं. तेरे रंगों ही में है तू तो ज्यों का त्यों है, इस बात को समझले और अपने स्वभाव में

मस्त रह तुझ में कुछ नहीं है—

वन्ध मोक्ष इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः
गुणस्य माया मूलत्वात् न मे मोक्षो न बंधनम्

ॐ ॐ ॐ

आत्मा में स्थिति से काम न चलैगा

आत्म ज्ञान से मुक्ति होती है

('ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः')

बहुधा मनुष्यों का ख्याल है कि ' साधो स्वरूप में स्थित (आरूढ) होना चाहिये तभी काम चलता है-ऐसा माल्म पड़जाने से कि मैं ब्रह्म हूं-इससे, इतने जानने मात्र से,कुछ नहीं बनता—

सच्चिदानंद बड़े प्यार से कहता है कि प्यारे तू ब्रह्म है ' (तत्वमसि)—अज्ञान दशा में भी 'बद्धोहम् २ और जीवोहं जीवोहम्' कहता है उसवक्त भी—क्यों कि असली—सच्ची वस्तु त्रिकाल में भी बाध को प्राप्त नहीं होती जैसे रस्सी में सर्प दीखता है उस समय भी रस्सी तो रस्सी ही रहती है-पूर्ण रूप से-ज्यों की त्यों—अपने रस्सी भाव में ही स्थित है तैसे तू भी हर समय ब्रह्म ही है और अपने भाव में स्थित है, लेकिन इतने मात्र से काम न चलैगा—यह याद रखना-अच्छी तरह, स्वरूप में स्थिति (निष्कलंक-द्वैत की प्रतीति से भी रहित) तो सुषुप्ति में भी रोज़ अनुभव करते हो-उस से क्या होगया ? ब्रह्म अपने ब्रह्म भाव में हमेशः स्थित है और वह [ब्रह्म] तू ही है वेद की सुनादी है 'तत्वमसि' इस वास्ते

तू ब्रह्म अपने भाव में-ब्रह्म भाव में-स्वरूप में हमेशः स्थित है ही, इस में संदेह ही नहीं-पर इस से कुछ नहीं हुआ. स्वरूप में स्थित होने से वेद भी मोक्ष नहीं कहता उसका तो गर्जनावत यह वाक्य है कि 'तरति शोकमात्मवित्' आत्मा, अपना स्वरूप, अपने आपे को जानने वाला ही शोक को तरता है-दूसरा रास्ता ही नहीं किसी जगह सच्चिदानंद ने लिखा देखा है कि 'यदा चर्मवदाकाशं वेष्टियिष्यंति मानवाः तदा देवमविज्ञाय दुःख स्यांतो भाविष्यति ॥

प्यारे तू आपे में हमेशः स्थित है परंतु ज़रूरत है सिर्फ़ ऐसा जानने की-राजा कर्ण आप को सूत पुत्र जानता था उस समय भी करण ही था और स्थित भी कर्ण भाव [क्षत्रियत्व] में ही था और जब आपको सूर्य, व कुन्ती पुत्र जान लिया तब भी कर्ण ही रहा और कर्ण भाव में वैसा ही कायम रहा, नये सिरे से कर्ण बन नहीं गया, सिर्फ़ मालूम होगया, और उसी समय सूत पुत्रपन का ख्याल काफूर होगया, उसको यह ज़रूरत नहीं पड़ी कि कुछ मुद्दत तक कर्णपन का अभ्यास करता, 'मैं कर्ण हूं, मैं कर्ण हूं' ऐसे अभ्यास की आवश्यकता नहीं थी, तैसे तुझ को भी सिर्फ़ मालूम होने की जरुरत है और तू कर्ण तो है ही, है कर्णपन भी है ही, तू ब्रह्म तो है ही, ब्रह्मत्व में स्थित है ही, सिर्फ़ मालूम करले 'मैं दरवाक़े क्या हूं?' यह मालूम करले, बस ख़तम। यह बात मालूम करने के लिये भारी और मोतबिर गवाही वेद की मानले-कृष्ण की मान ले, भगवान् शंकराचार्य जी की ही मानले, और आज कल के महात्माओं

मस्त रह तुझ में कुछ नहीं है—

वन्ध मोक्ष इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः
गुणस्य माया मूलत्वात् न मे मोक्षो न बंधनम्

ॐ ॐ ॐ

आत्मा में स्थिति से काम न चलैगा

आत्म ज्ञान से मुक्ति होती है
('ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः')

बहुधा मनुष्यों का ख्याल है कि ' साधो स्वरूप में स्थित (आरूढ) होना चाहिये तभी काम चलता है–ऐसा मालूम पड़जाने से कि मैं ब्रह्म हूं–इससे, इतने जानने मात्र से,कुछ नहीं बनता—

सच्चिदानंद बड़े प्यार से कहता है कि प्यारे तू ब्रह्म है ' (तत्वमसि)–अज्ञान दशा में भी 'बद्धोहम् २ और जीवोहं जीवोहम्' कहता है उसवक्त भी–क्यों कि असली–सच्ची वस्तु त्रिकाल में भी वाध को प्राप्त नहीं होती जैसे रस्सी में सर्प दीखता है उस समय भी रस्सी तो रस्सी ही रहती है–पूर्ण रूप से–ज्यों की त्यों–अपने रस्सी भाव में ही स्थित है तैसे तू भी हर समय ब्रह्म ही है और अपने भाव में स्थित है, लेकिन इतने मात्र से काम न चलेगा–यह याद रखना-अच्छी तरह, स्वरूप में स्थिति (निष्कलंक-द्वैत की प्रतीति से भी रहित) तो सुषुप्ति में भी रोज़ अनुभव करते हो-उस से क्या होगया ? ब्रह्म अपने ब्रह्म भाव में हमेशः स्थित है और वह [ब्रह्म] तू ही है वेद की मुनादी है 'तत्वमसि' इस वास्ते

तू ब्रह्म अपने भाव में-ब्रह्म भाव में-स्वरूप में हमेशः स्थित है ही, इस में संदेह ही नहीं-पर इस से कुछ नहीं हुआ. स्वरूप में स्थित होने से वेद भी मोक्ष नहीं कहता उसका तो गर्जनावत यह वाक्य है कि 'तरति शोकमात्मवित्' आत्मा, अपना स्वरूप, अपने आपे को जानने वाला ही शोक को तरता है-दूसरा रास्ता ही नहीं किसी जगह सच्चिदानंद ने लिखा देखा है कि 'यदा चर्मवदाकाशं वेष्टियिष्यंति मानवाः तदा देवमविज्ञाय दुःख स्यांतो भविष्यति ॥

प्यारे तू आपे में हमेशः स्थित है परंतु ज़रूरत है सिर्फ़ ऐसा जानने की-राजा कर्ण आप को सूत पुत्र जानता था उस समय भी करण ही था और स्थित भी कर्ण भाव [क्षत्रियत्व] में ही था और जब आपको सूर्य, व कुन्ती पुत्र जान लिया तब भी कर्ण ही रहा और कर्ण भाव में वैसा ही क़ायम रहा, नये सिरे से कर्ण बन नहीं गया, सिर्फ़ मालूम होगया, और उसी समय सूत पुत्रपन का ख्याल काफूर होगया, उसको यह ज़रूरत नहीं पड़ी कि कुछ मुद्दत तक कर्णपन का अभ्यास करता, 'मैं कर्ण हूं, मैं कर्ण हूं' ऐसे अभ्यास की आवश्यकता नहीं थी, तैसे तुझ को भी सिर्फ़ मालूम होने की ज़रुरत है और तू कर्ण तो है ही, है कर्णपन भी है ही, तू ब्रह्म तो है ही, ब्रह्मत्व में स्थित है ही, सिर्फ़ मालूम करले 'मैं दरअस्ल क्या हूं?' यह मालूम करले, बस ख़तम । यह बात मालूम करने के लिये भारी और मोतबिर गवाही वेद की मानले-कृष्ण की मान ले, भगवान् शंकराचार्य जी की ही मानले, और आज कल के महात्माओं

की मानले-प्यारे आत्म देव अगर किसी की नहीं माने तो आप ही देखले कि सुषुप्ति में तू ही तू है [ग़ैर की प्रतीति नहीं होती इस लिये, वेदान्त में ज्ञात सत्ता ही विषय की मानी है अज्ञात सत्ता नहीं मानी है जगत, जीव, ईश्वर, मैं तू, वह वग़ैरः की कचपच कुछ नहीं है जैसे समुद्र निस्तरङ्ग होता है तैसे, और फिर स्वप्नजगत् तुझमें से उत्पन्न होकर और तुझमें कुछकाल स्थित रहकर आख़िरकार तुझमें लय होजाता है, सुना है कि महाप्रलयमें से परमात्मा ही बचता है और बाकी सब चीज़ोंका अभाव होजाता है तैसे स्वप्न सृष्टि का प्रलय होने पर सिर्फ़ तूही तू (स्वप्न में शरीर दीखता था-उससे भी अलग-द्रष्टा) रह जाता है, देखले देखले, हाथ कंकण को आरसी न ढूंढ 'मैं' कैसा हूं, क्या हूं ' यह जानने को किसी से मत पूछ किसी की न सुन, इन्द्रियों और अंतःकरण का भी विश्वास मत कर, यह भी धोखे बाज़ हैं चीज़ का वास्तव स्वरूप नहीं बताते, मनुष्य की इन्द्रिय कहती हैं कि शहद मीठा है और उसी शहदको कुत्ते की इन्द्रिय मीठा [स्वादिष्ट] नहीं बताती, बोलो शहद कैसा रहा ? मीठा या कड़वा ? कभी मत विश्वास कर इन इन्द्रियों का, इनको छोड़, इनसे कुछ न पूछ, तू खुद देख

सच्चिदानन्द कहता है कि तू इस अंतःकरण को-इन इन्द्रियों को ज्ञान में मददगार समझ रहा है यह सरीहन तेरी भूल है, इसी भूल के कारण तू आपे को नहीं जानता है छोड़ इनका साथ, इन से फ़ैसला न मांग, इन के ऊपर, इन सातों (पांच ज्ञान इन्द्रिय, और मन, बुद्धि) के ऊपर सातवें

आसमान के ऊपर हज़रत, खुदावन्द करीम, आत्म भगवान का दर्शन कर, परम धाम में पहुंचने के वास्ते सात सीढियां लगी हैं उन के ऊपर पहुंच, बीच में ही, सीढी ही पर आसन मत करले, यह तो नौकर चाकरों के घर हैं उन घरों में ही ठहर २ कर आज तेरा हौसिला इतना गिरा हुआ है कि 'अहंब्रह्मास्मि' कहने तक में होश उड़ते हैं, और सच्चिदानन्द तो हां यह भी कहता है और तू भी अनुभव से मुक़ाबला कर देख, ख़ाली बक २ झक २ से काम नहीं चलेगा कि तू इन सातों मंज़िलों को, सातों सीढियों को, ५ ज्ञान इन्द्रिय-छटे मन सातवीं बुद्धि को जानता है, इन सातों का साक्षी है, सातों के अभाव (सुषुप्ति-समाधि) में भी रहता है- इस वास्ते तू इन से अलग, इन से ऊपर, इन के पटत्व मंदत्व वग़ैरः का साक्षी सातों आसमानों से ऊपर है, ही। पहुंचना वहुंचना कहीं नहीं, तू जहां है वहीं, सब से ऊपर, शिखर पर स्थित रह, प्यारे कान्हा ! तू ऊंची जगह पर खड़ा हुआ आप को जान-जब नीचे की तर्फ़, बहुत निचाई की ओर देखता है तब डर मालूम होता होगा, सो प्यारे ऐसा ही हुआ करता है, क़ाइदः है सब के अनुभव सिद्ध है, परन्तु तू उन की तरफ़, गहरे गढों की तरफ़, इंद्रिय अंतःकरण की तरफ़ देख ही मत, तू बहुत ऊंचाई पर है तुझ से ऊंचा कोई नहीं है, इंद्रिय अंतःकरण की तरफ़ न देख और सच्चिदानन्द कहता है कि देखता भी भले ही रह लेकिन जानले कि तू गिर नहीं सकता जहां तू है वहां हमवार जगह है, बस तू

ही तू, हे गिरेगा नहीं—

आंख और कानों को करके बन्द देख अजब बहार।
ख्वाह आंखें खोलकर आपे को आप निहार॥
जानले जानले—इस ख्वाब में जाग पड़॥ ॐ ॐ

तुरिया व तुरियातीत

प्यारे क्या तुझे तुरिया अवस्था में स्थित होने की इच्छा है? अच्छा आज तुझे तुरियावस्था में ही सच्चिदानन्द स्थित किये देता है, इतना ही नहीं, तुझे ही तुरिया रूप बनाये देता है—अवस्था तूने चार ही सुनी होंगी यानी जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया, खूब ध्यान से विचार कर देख, कि जागृदादि तीन अवस्थाओं का तू साक्षी अवश्य है-साक्षी हमेशः साक्ष्य से पृथक् ही होता है इस लिये तू जागृदादि से पृथक ही हुआ—जागृदादि तीनों अवस्था एकदम नहीं हुआ करती हैं—एक काल में एक ही अवस्था होती है:—सुषुप्ति में स्वप्न जागृत नहीं हैं—स्वप्न में जागृत सुषुप्ति नहीं हैं जागृत में स्वप्न सुषुप्ति नहीं है—और जिस समय कोई भी एक अवस्था होती है उस समय बाकी की दो अवस्थाओं का अभाव ही होता है यानी यह अवस्थाएं इस तरह प्रतीत होती हैं जैसे रज्जू में कभी सर्प, कभी माला, कभी जल धारा की प्रतीति होजावे—सर्प माला और जल धारा प्रातीतिक हैं

परन्तु 'इदं अंश' रज्जू सदैव विद्यमान् रहता है तैसे जागृदादि तीनों अवस्था में अनुगत तीनों का साक्षी तू सदैव ही रहता है, तेरा अभाव हर्गिज़ नहीं होता-तीनों अवस्था प्रातीतिक और तीनों का साक्षी (तू) वास्तविक है-इस लिये साक्षी (तू) तीनों से अलग चौथा है-यानी तुरिया रूप है-तुझे, साक्षी रूप-तुरिया रूप रज्जू में जागृत स्वप्न सुषुप्ति रूप सर्प माला और जलधारा की तरह भासते हैं-जब तू आप को जागृदादि का साक्षी जानलेगा तो तुझे बलात्कार से मानना पड़ेगा कि तू ही तुरिया है और जब तू आपको तीनों अवस्थाओं का साक्षी-तुरिया रूप जानकर तीनों प्रातीतिक अवस्थाओं की उपेक्षा करदेगा उस समय तेरा नाम कुछ नहीं है तुरिया नाम तो जागृदादि की अपेक्षा से था-अब नाम कौन रक्खै ? जागृदादि तीन अवस्थाओं से बाहर मन और वाणि भी नहीं-उसका नाम अगर जिज्ञासू को समझाने के अर्थ कहा जाय तो तुरियातीत कहलो-तात्पर्य यह है कि तूही तुरिया है जागृदादि त्रय का साक्षी होने से और जब तीनों अवस्थाएँ रज्जू-सर्पवत् हैं तो तूही तुरियातीत है-दृष्टांतः-क, ख, ग, घ चार पुरुष हैं 'क' को या 'घ' को प्रथम या चौथा कहा जायगा परन्तु जब तीन का (क, ख, ग का वा ख, ग, घ का) लोप करदोगे तो बाकी रहे हुये 'क' या 'घ' को न पहला कहा जायगा न चौथा कहा जायगा, है तो ज़ुरूर वह, परन्तु पहिला या चौथा यह नाम अब उसका नहीं रहा-तैसे जागृदादि तीन की अपेक्षा से चौथा तुरिया है इन तीन का उपेक्षा

करने पर तूही तरियातीत है–

प्यारे तुझ आत्म रूप- ब्रह्मरूप–तुरिया रूप भूमि पर, रङ्गभूमि पर-जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति रूप नाटक होते हैं नाटक होते हैं उस समय तेरा नाम तुरिया है और नाटक नहीं होते हैं उसमें तू तुरियातीत है–और अच्छी तरह, खूब ध्यान पूर्वक– निर्मल वुद्धि से विचार कर देखे तो तू हर समय तुरिया या तुरियातीत ही है जागृदादिका साक्षी होने से और जागृदादि तीनों अवास्तविक, नमूदी, प्रातीतिक, कल्पित, रज्जू सर्पवत् मिथ्या होने से, नहीं होने के बराबर होने से, यह तीनों अवास्तविक, आरोपित अवस्थाएं तेरे स्वरूप में किंचित भी विकार नहीं कर सक्ती हैं, रज्जु, सर्प रज्जु को विषैली नहीं बना सक्ता है, श्री भाष्यकार स्वामी कहते हैं कि '*आरोपितं नाश्रय दूषकं भवेत् कदापि मूढै* रति दोष दूषितैः । नार्द्री करोत्यूपर भूमि भागं मरीचिका वारि महा प्रवाहः । प्यारे जागृदादि आरोपित हैं तू इन के पीछे क्यों सूखा जाता है तू तो शुद्ध ब्रह्म रूप है-तुही तुरिया है तुझ तुरिया रूप पट पर जागृदादि के चित्र प्रतीत होजाते हैं और जैसे नाटक के पर्दों में फ़ासले मालूम होते हैं सड़क मीलों लम्बी दीखती है वगैरः परंतु हाथ फेर कर देखने पर साफ़ मालूम होजाता है कि पर्दे पर ऊंचाई निचाई फ़ासले वगैरः नहीं है-पास नज़र आती हुई चीजें और दूर नज़र आती हुई चीजें, उभरी और गहरी प्रतीत होती हुई चीज़ें एक ही लेविल में हैं तैसे ही तुझ पर जगत रूप चित्र

विचित्र रूप में दीखता हुआ भी वैसा नहीं है—स्वप्न में सूर्य चन्द्रमा बड़े फ़ासले पर दीखते हैं परन्तु तू अच्छी तरह, जागकर जान लेता है कि वे फ़ासिले प्रातीतिक थे तैसे ही यहां भी जान—यक़ीन कर और स्वप्न के द्रष्टांत से जानले कि इस सृष्टि में जितने फ़ासले पर तुझसे तेरा सर है उतने ही फ़ासले पर सूर्य और चन्द्मा भी हैं-जैसे समुद्र में तरङ्ग बुदबुदों में भेद दीखता है (आकार में) और तरंगों में परस्पर फ़ासले भी दीखते हैं लेकिन सब आकार जल ही है और जैसे सब ही बराबर दूरी पर हैं—बराबर दूरी पर क्या सब जल रूप ही हैं तैसे प्यारे यह सृष्टि तेरा ही रूप है—भाष्यकार स्वामी कहते हैं कि ' बहुभिः किमेभिरुक्तैरहमेवेदं चराचरं विश्वम् । सीकिर फेन तरंगा सिंधोरपराणि न खलु वस्तूनि ॥ क्यों :भोले महेश ! स्वप्न में निज अनुभव से मालूम करके भी क्या बाक़ी रहगया जो मानने में पसोपेश करता है ? दूसरों की बनाई पुस्तकें पढ़ते पढ़ते उमर गुज़ार दी, ज़रा परमात्मा की बनाई हुई, नहीं नहीं, अपनी बनाई हुई पुस्तक (आत्म, गीता, सृष्टि) भी पढ़ कर देख, पढ़ते पढ़ते बन्दे से खुदा, जीव से ब्रह्म न हो जाय, तो कहना, फिर तो बेतहाशा तेरे मुंह से, तेरे रोम रोम से,' निकलेगा, क्या ? 'किंचिन्त्यं, किमाचिन्त्यं किंकथनीयं किमप्यकथनीयं। किं कृत्यं किमकृत्यं सर्वं तदिति [अहमिति] जानतां विदुषाम् ॥ जगदाकारतयापि प्रथते गुरु शिष्य विग्रह तयापि । ब्रह्माद्याकारतयापि प्रातिभातीदं परात्परं तत्वम् ॐ प्यारे हाथ के कंकण को आरसी क्या ?

आत्मा, परमात्मा जो तेरा वास्तव स्वरूप है (वेद की मुनादीः तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि) उसको आरसी (दर्पण) में होकर न देख, पुस्तकों में न ढूंढ, वह [तेरा स्वरूप, परमात्मा] तो तू आप ही है—

ॐ ॐ ॐ

तातील छुट्टी रजा

आज यह सच्चिदानंद नामी मेरे आत्म महा सागर की तरंग वीरजी नामक तरंग सहित यहां आगई—वास्तव में यहां और वहां यह कल्पना तरंग कृत हैं और मुझ में In the ocean of my all-pervading self नहीं हैं आज यह बुद्धि और शरीर रूपी मुलाज़िम काम करने में कुछ सुस्त मालूम होते हैं-जैसे हाथ में पूरा २ बल होने पर भी यदि लकड़ी कमज़ोर या टूटी होती है तो काम नहीं होसक्ता है तैसे मैं आत्म रूपी पुरुष जैसे का तैसा हूं परंतु कार्य का साधन बुद्धि आराम चाहती है-अच्छा कुछ परवाह नहीं सच्चिदानंद जो सर्व का आत्मा है उस के पास एक ही बुद्धि शरीर नहीं है जितनी बुद्धि और शरीर इस संसार में हैं और होंगे वह सभी मेरे हैं जैसे कि महाराजाधिराज के बहुत से सेवक काम में प्रवृत्त होते हैं और बहुत से आराम करते हैं तैसे ही मेरी अनेक बुद्धि काम कर रही हैं कहीं स्टेशन पर बड़े २ सूक्ष्म विचार चल रहे हैं कहीं दुकानों में दिन के कुल हिसाब देखे जारहे हैं-कहीं

कुछ हो रहा है कहीं कुछ-यह सब मेरी ही तो बुद्धियां काम कर रही हैं जैसे १६०० गोपिकाओं के बीच एक ही कृष्ण विलास करते थे तैसे ही में सर्वात्मा सोती, जागती, काम करती, काम से इन्कार करती—समस्त बुद्धियों को सत्ता स्फूर्त्ति दे रहा हूं और मेरा केवल एक ही शरीर नहीं है समस्त शरीर स्थावर जंगम मेरे ही हैं—अच्छा जो हो सो हो आज की तरंग का यही ठाठ है ॐ शरीरादि की दृष्टि से चलना फिरना आदि इसी प्रकार दीखते हैं जैसे जल में बुद बुदे चलते फिरते हैं परंतु जल से बाहर नहीं जाते तैसे ही रेल पूना का शहर आदि मेरे ही भीतर क्रिया करते दीखते हैं—मुझ से बाहर कहां जावें ॐ ॐ ॐ

दृष्टांत

किसी राजा के यहां कुछ मज़दूर शूद्र) काम किया करते थे, एक दिन राज-कुमारी झरोखे में बैठी हुई सब की नज़र पड़ गई, सब बड़े शौक़ से उसे देखने लगे, उन मज़दूरों में से एक चमारी जिसका काम घोड़ों के लिये दाना दलने का था अपनी चक्की चलाते २ कहने लगी कि ' यह लड़की तो मेरे पुत्र बुद्धा के लायक़ है, यह अनुचित बात सुनकर सब ने उस को धमकाया और कहा कि मूर्खा ऐसे अनुचित शब्द न बोल, कोई राज-पुरुष सुन लेगा तो तुझे दंड मिलेगा परंतु उस चमारी ने किंचित भी ध्यान न दिया उसी तरह बकती रही, शाम को छुट्टी मिलने पर सब मज़दूर अपने २ घर को चले तब रास्ते में चमारी भय भीत हुई सब

से कहने लगी कि 'भाई आज एक बहुत बड़ा अनुचित शब्द चक्की पर बैठे २ मेरे मुख से निकल गया था, अब मैं पछताती हूं, कृपा कर किसी और के सामने ज़ाहिर न करना और मुझे बतलावो कि किसी राज-कर्मचारी ने तो नहीं सुन पाया ? मज़दूर लोग कहने लगे कि मूर्खा अब तू डरती है और उस समय रोकने से भी नहीं रुकती थी, ख़ैर जो हुआ सो हुआ, अब फिर ऐसा न बोलना अभी तक किसी राज–दर्बारी आदमी ने नहीं सुना है—

दूसरे दिन उस चमारी ने दाना दलते हुवे फिर वही पहिले दिन की बात छेड़ी और सब के रोकने पर भी न मानी, कहने लगी कि मेरा बुद्धा सब प्रकार योग्य है, उसका विवाह राज-पुत्री के साथ हो जाय तो अच्छा है, घर जाते समय रास्ते में पहिले दिन की तरह फिर डरने लगी, इसी तरह कई दिन गुज़र गये, दाना दलते समय बे खौफ़ी से वे ही बातें किया करे और घर के रास्ते में डरकर पछताया करे, कुछ दिनों में यह बात किसी राज–कर्मचारी ने भी सुनी और फिर यह बात राजा के कान तक पहुंच गई, राजा को क्रोध आया और उस चामारी को पकड़वा मंगाया–चमारी थर थर कांपती हुई राजा के संमुख गई और हाथ बांध मुख में तृण गृहण करके बोली 'हे नाथ क्षमा कीजये मैं बावली हूं–न मालूम क्यों मेरे मुख से यह अपशब्द निकल गया था, क्षमा कीजये' राजा ने कुछ दंड न दिया, चमारी राजा को धन्यवाद देती हुई अपनी चक्की पर आ बैठी, बैठते ही

ऊपर लेना नहीं चाहता है इस का यही कारण है कि यह शख्स शरीराभिमानी, वास्तव में चेतन शुद्ध ब्रह्म ही है फिर क्यों अपने को कुसूरवार समझे- जैसी सूरत- मोटी या पतली रस्सी की होती है तैसी ही सूरत सर्प की भी दिखाई देती है तैसेही अहंकार- मन- बुद्धि और शरीर इत्यादि का अधिष्ठान व आधार शुद्ध ब्रह्म ही है- इसलिये हर एक आदमी आपको शुद्ध ही जानता और मानता है- परन्तु भूल सिर्फ इतनी है कि उस बडप्पन को शरीर मन व बुद्धि के साथ नत्थी कर देता है और चाहिये यह कि शरीर मन वगैरः का साक्षी जो ब्रह्म, आत्मा कुटस्थ है उसके अर्पण करे ॥

दृष्टांत

एक मर्तबः दो जंगी ऊँट अपने हेडक्वार्टर (सदर मुक़ाम) को कहीं से लौटे जारहे थे, उनमें से एक ऊँट तो संतोष पूर्वक चुपचाप सफ़र ते कर रहा था और दूसरा रास्ते के खेत व वृक्षों पर मुंह मारता चलता था, हांकने वाला दूसरे ऊंट को वृक्ष पर मुंह मारते वक्त डंडे से मारता था लेकिन पिटने पर भी वह ऊंट खेत का खाना नहीं छोड़ता था, पहिला ऊंट भी उसे समझाता था कि भाई क्यों पिटता है अपने स्थान पर चलकर मौज में चारा खायंगे लेकिन वह नहीं मानता था, खेत भी चरता जाता था और साथ ही डंडे भी खाता जाता था- आख़िरकार अपने किले के क़रीब पहुँचे, पहुंचते ही उन दोनों को किसी मुहिम पर एक दम रवानः होने का हुक्म मिला- बिचारों ने एक मिनट भी

आराम न किया और दूसरी तर्फ़को रवानः होना पड़ा-तव रास्ते में दूसरे यानी पिटने वाले ऊँटने संतोषी ऊँट से कहा कि क्यों भाई हम अच्छे रहे कि तुम ?

॥ सिद्धान्त ॥

दुनियादार मनुष्य को चाहिये कि व्यवहार में तरह २ की गड़वड़ होने पर भी और स्त्री पुत्रादिक की सेवा करते हुए भी परमात्मा सम्बन्धी विचार सत्संग करता ही रहे– यह हर्गिज़ न ख्याल करे कि फ़लां काम करलेंगे तव-या बूढे होजायंगे तव ईश्वर सम्बन्धी विचार कर लेंगे-अभी क्या है वहुत समय पड़ा है-ग़रज़ व्यवहार के डन्डे खाते हुए भी सत्संग रूपी खेत खाता रहेगा तो अखीर में दुख का अनुभव नहीं करेगा—

॥ दृष्टान्त ॥

ठठेरे जो लोहे और पीतल आदि के बर्त्तन वनाया करते हैं उनकी दूकानों में बिल्ली उनके खानपान की चीज़ोंको बेख़ौफ़ खाती रहती हैं, और दूकान में जो हरवक्त धड़ाधड़ आवाज़ होती रहती है उनकी ज़रा भी परवाः नहीं करतीं और घरों में बिल्लियों को देखा गया है कि ज़रा सी आवाज़ से एकदम भागजाती हैं घर की बिल्ली ज़रा से खटके से भाग जाती हैं–और ठठेरे की बिल्ली खाना खाती रहती हैं और ऊपर नीचे इधर उधर धड़ाधड़ घनों की आवाज़ की भी परवाः नहीं करतीं॥

। सिद्धांत ।

प्यारे पाठक ! यह संसार या गृहस्त ठटेरे की दूकान है यहां की धड़ाधड़ी की—आवाज़ की यानी हर्ष शोक की-विक्षेप की ज़राभी परवाः न करो, अपना काम बनालो अपने आप को जान लो और दूसरी तरह देखो तो—यह धड़ाधड़ घन की चोटें तुम (आत्मा) पर नहीं पड़रहीं हैं यह तो तुम से पृथक तीनगुणों में ही गदर सा मचा हुआ है—तुम साक्षी हो—तुम को इनसे क्या—तुम तो' आपे में स्थित रहो ' गुणा गुणेपु वर्त्तंते इति मत्वा न सज्जते '

। दृष्टांत ।

एक आदमी थोड़ी सी खाने की चीज़ें लिये हुए कहीं को जाता था मार्ग में कई कुत्ते उसके साथ हो लिये-वह आदमी डरा उसने जाना कि कुत्ते मेरे पीछे काटने को लगे हैं—रास्ते में उसने बहुत शोर मचाया—और अपने को बड़ी आपत्ति में समझा किसी आदमी ने उसे दुखी देख कर समझाया कि बावले क्यों दुखी होता है कुत्ते तेरे पीछे नहीं हैं—वे तो मिठाई जो तेरे पास है उसके पीछे लगे हैं तू नाहक़ शोर मचाता है—न माने तो मिठाई फैंक दे और देख कोई कुत्ता तेरे साथ न रहेगा—उसने मिठाई फैंक दी कोई कुत्ता फिर उसके साथ न गया सब वहीं रहगये—फिर दूसरे दिन वह मिठाई लेकर उसी मार्ग को गया और कुत्ते भी लगे लेकिन उसको विल्कुल भय न हुआ, उसने अच्छी तरह निश्चय

कर लिया कि यह कुत्ते मुझे किंचित भी हानि पहुंचाने वाले नहीं हैं–यह तो मिठाई के साथ हैं–

॥ सिद्धान्त ॥

प्यारे पाठक ! जन्म मरण का दुख और जन्म मरण रूपी दो दीवारों के बीच के अनंत प्रकार के दुख तू आपे में मत मान यह तो अंतःकरण में हैं तुझ में इनका नाम भी नहीं–बंधन का दुख, मोक्ष की इच्छा इत्यादि जितना संसार तुझे मालूम होता है तेरे पीछे नहीं है यह तो अंतःकरण रूपी मिठाई के पीछे है तुझमें मोक्षकी इच्छा भी शिव २ कहां? अतंःकरण रूपी मिठाईफेंकदे और,हां-सुषुप्तिमें तू अनुभव ही जो कर चुका है,वहां अंतःकरण नहींथा सिर्फ तूही तू था अकेला, कह,कुछदुख था?बन्धन व मोक्षके नाम भी थे? परिच्छिनता और व्यापकता उस समय थे क्या? बन्धन और मुक्ति उस समय तुझ से आंख मिला सकते थे?प्यारे अब तो मान-अपने कोअसंग निर्विकार,था अबभी कुछ मीन मेख बाकी है,और अंतःकरण है ,प्रातीतिक-वैसे–ही–यों ही–कल्पित, न हुए की न्याई अगर सत्य और वास्तव में इसका स्वरूप कुछ होता-तो इसका सुषुप्ति में अभाव न होता-सत्य का अभाव नहीं होता और असत का भाव नहीं होता-इसका अभाव अनुभव सिद्ध है और प्रातीतिक भाव भी है इस लिये रज्जू के सर्प की तरह है, दीखता भी है और है भी नहीं-नाटक की तरह है-और तू इस भाव और अभाव दोनों का साक्षी अटल अचल है, क्यों डरता है इस से ? ॐ ॐ ॐ

ॐ
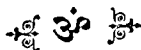
॥ दृष्टांत नई रेलका सफ़ा २१ ॥

जिन दिनों रेल गाड़ी पहले ही पहल चलना शुरू हुआ था उन दिनों एक आदमी ने (जो खुद रेल गाड़ी में जब तक नहीं बैठा था लेकिन किसी से सुनकर बहुतसा हाल रेल गाड़ी के मुतालिक माल्हूम कर लिया था) किसी गांव में जाकर अनजान–गवांरों में बैठ कर रेल का हाल कहना शुरू किया, नई बात थी इस लिये गांव वाले बड़े शौक से सुनते थे और बीच में कोई २ बात उसी के मुतालिक दरियाफ्त भी करते जाते थे, वह आदमी बयान करने लगा कि भाइयो एक गाड़ी ऐसी जारी हुई है कि उस में बैल घोड़ा ऊंट वगैरः कुछ भी नहीं जोता जाता, धूंवे के ज़ोर से बड़ी तेज़ फक २ करती हुई दोड़ती है, घंटी बजती है, सब मुसाफिरों को एक ख़ास खिड़की के रास्ते से दाम लेकर टिकट दिया जाता है, बड़े आराम की गाड़ी बनी है गांव वालों ने पूछा कि क्या आपने उस में सफर किया है ? उसने जवाब दिया कि कई बार किया है, उस में सब से पीछे गार्ड बैठता है वगैरः वगैरः गरज़ सब बातें उसने ठीक ठीक उन लोगों को सुनादीं उन्हीं में एक शख्स ऐसा भी था जो एक

मर्तबः रेल गाड़ी का सफ़र कर चुका था, वह भी चुपके २ सुनता रहा आख़िर को गांव वालों ने कहा कि कुछ और सुनाओ तब उसने कहा कि भाई उस रेल में तीन दर्जे की उत्तम मध्यम कनिष्ट गाड़ियां होती हैं और किराया भी दर्जे के अनुसार कम ज्यादः लगता है उत्तम [अव्वल] दर्जे में सब से ज्यादः महसूल लगता है—गांव वाले पूछने लगे कि उसमें क्या अधिकता है उसने कहा कि उसमें आराम अधिक होता है उसमें गद्दी होती है भीड़ बहुत कम होती है और मैं तो कई दफे उसी में बैठा हूं, इस पर गांव वालों ने कहा कि क्या इसी आराम के वास्ते इतना ज्यादः किराया है ? तब वह बेवकूफ़ कहने लगा कि भाइयो इतना ही आराम क्यों, अव्वल दर्जे वाले मुसाफ़िर तीसरे दर्जे वालों से पहर भर पहिले पहुंच जाते हैं, गांव वाले (अनजान आदमी) चुप होगये और विश्वास कर लिया परंतु उन में उस आदमी को जो चुपके २ सुन रहा था झट मालूम हो गया कि यह झूंटा है यह रेल में एक मर्तबः भी खुद नहीं बैठा है- सुन कर ही कहने वाला है—

ॐ ॐ ॐ

अहंकार महदूद नीच को, भूल कभी नहीं गहना,
बड़ा होय छोटा बनकर क्यों नाहक दुखड़े सहना ॥रंगीले०२॥
एक देह की कैद बीच में, कबहु न आसन करना,
थावर जंगम सभी चराचर अपना ही देह समझना ॥ रंगीले०३॥
जगका खाता देख लिया सब अब बिल्कुल नहीं डरना ।
लगा कहकहे देख देह का, जरा जनम और मरना ॥ रंगीले ४॥
होय बुदबुदों का जल में ज्यों बनना और बिगड़ना ।
त्यों मन प्राण देह का तुझ में, यही वेद का कहना । रंगीले ६ ॥
सब जग मिथ्या है ज्यों सुपना, तेरा ही संसरना ।
तू है सत् चित आनंद अनुभव करि २ खूब हरपना ।
रंगीले तू हरदम मगन अब रहना ।७।

शब्द चौथा

छननें दे अब गहरी- मनुआं छननें दे अब० टेक
महा वाक्य का मन्त्र सुमिर कर ।
नाथा अजगर ज़हरी मनु० ॥१॥
दृश्यादृश्य जगत् अब भास्यो ।
निज आतम की लहरी–मनु० ॥२॥
संशय रहा नहीं अब बाक़ी ।
करदे बन्द कचहरी—मनु० ॥३॥
आतम ब्रह्म लख्यो होजा चुप ।
अब तो योंही ठहरी—मनु० ॥४॥
सच्चिदानंद विमल हो गरजे ।
चढ़े खुशी फिर दुहरी–मनु० ॥५॥

० ॐ ०

भली निबाही यार, मनुआँ भली निबाही यार–टेक
सांचा जग को जान भोगता, था में क्लेश अपार
मृगतृष्णा सा तैं लखवाके, कीया परम उदार–मनु० १
जान आपको देह सहूं था, बाचा कष्ट हज़ार
सत् गुरु के दर्शन कर वाए, भूलूँ ना उपकार–मनु० २
सत् गुरु वचन प्रेम से सुनकर, खूब धारणा धार
ब्रह्म रूप आतम लखवाया, बेडा कीया....पार–मनु० ३
सब जग आतम ही अब भासे, होगई अजब बहार
राग द्वेष कित गये ना जानूं ,नहीं बैर और प्यार–मनु० ४
जन्म मरण का क्लेश नष्ट कर, सोऊँ टाँग पसार
तेरी किरपा से आनँद के, हरदम बजते....तार–मनु० ५
कर्त्तव्याकर्त्तव्य बुद्धि का, डाल दिया है भार
निष्क्रिय आतम अब लखि पाया, सारन हू को सार-मनु० ६
धन्यवाद देता हूं मनुआं तुझ को बारम्बार
तेरे माने पर ही प्यारे, था सब दारमदार—मनु० ७
मरना जीना देख देह का, समझा खूब बिचार
पैदा नष्ट होयँ ज्यों लहरें, जल में बिना शुमार—मनु० ८
नहिं विक्षेपरु नाहिं समाधी, कर लीया निरधार
बंध मुक्ति भी अब नहीं भासें डाल दिये हथियार—मनु० ९
तू भी ऐश करा जो चाहे, मत रच अब संसार
सतचित् आनँद में लयहोकर तूभी जन्मसँभार-मनु० १०

अहंकार महदुद नीच को, भूल कभी नहीं गहना,
वड़ा होय छोटा वनकर क्यों नाहक दुखड़े सहना,॥रंगीले०२॥
एक देह की कैद बीच में, कबहु न आसन करना,
थावर जंगम सभी चराचर अपना ही देह समझना॥ रंगीले०३॥
जगका खाता देख लिया सब अब विल्कुल नहीं डरना ।
लगा कहकहे देख देह का, जरा जनम और मरना॥ रंगीले ४॥
होय बुदबुदों का जल में ज्यों बनना और विगड़ना ।
त्यों मन प्राण देह का तुझ में,यही वेद का कहना । रंगीले ६ ॥
सब जग मिथ्या है ज्यों सुपना, तेरा ही संसरना ।
तू है सत् चित आनंद अनुभव करि २ खूब हरपना ।
रंगीले तू हरदम मगन अब रहना ।७।

शब्द चौथा

छननें दे अब गहरी- मनुआं छननें दे अब० टेक
महा वाक्य का मन्त्र सुमिर कर ।
नाथा अजगर ज़हरी मनु० ॥१॥
दृश्यादृश्य जगत् अब भास्यो ।
निज आतम की लहरी—मनु० ॥२॥
संशय रहा नहीं अब बाक़ी ।
करदे बन्द कचहरी—मनु० ॥३॥
आतम ब्रह्म लख्यो होजा चुप ।
अब तो योंही ठहरी—मनु० ॥४॥
सच्चिदानंद विमल हो गरजे ।
चढे खुशी फिर

॥ ॐ ॥

भली निबाही यार, मनुआँ भली निवाही यार–टेक
सांचा जग को जान भोगता, था में क्लेश अपार
मृगतृष्णा सा तें लखवाके, कीया परम उदार–मनु०
जान आपको देह सहूं था, वाया कष्ट हज़ार
सत् गुरु के दर्शन कर वाए, भूलूँ ना उपकार–मनु
सत् गुरु वचन प्रेम से सुनकर, खूब धारणा धार
ब्रह्म रूप आतम लखवाया, वेडा कीया....पार–मनु
सब जग आतम ही अब भासे, होगई अजब बहार
राग द्वेष कित गये ना जानूं, नहीं वैर और प्यार–मनु
जन्म मरण का क्लेश नष्ट कर, सोऊँ टाँग पसार
तेरी किरपा से आनँद के, हरदम बजते....तार–मनु०
कर्त्तव्याकर्त्तव्य बुद्धि का, डाल दिया है भार
निष्क्रिय आतम अब लखि पाया, सारन हू को सार-मनु
धन्यवाद देता हूं मनुआं तुझ को वारम्वार
तेरे माने पर ही प्यारे, था सब दारमदार—मनु०
मरना जीना देख देह का, समझा खूब विचार
पैदा नष्ट होयँ ज्यों लहरी, जल में विना शुमार—मनु
नहिं विक्षेपरु नाहिं समाधी, कर लीया निरधार
बंध मुक्ति भी अब नहीं भासें डाल दिये हथियार—मनु०
तू भी ऐश करा जो चाहे, मत रच अब संसार
सतचित् आनँद में लयहोकर तूभी जन्मसँभार-मनु० १०